श्री बद्रीनारायण महात्म्य १९११

श्रीबद्रीनारायणमाहात्म्य.

(भाषाटीकासहित.)

॥ श्रीः ॥

सम्पूर्ण विषयोंसे विभूषित सर्वश्रेष्ठ-

श्रीबद्रीनारायणमाहात्म्य ।

जिसमें श्रीबद्रीकेदार तथा गंगोत्तरीमाहात्म्य
यात्राके नियमोंसहित संपूर्ण विषय हैं.

अनेक ग्रन्थोंके निर्माता, अनुवादक और यजुर्वेदके
भाषाकार श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र
महाशयसे **भाषाटीका** करवाय,

निजव्ययसे

श्री पं० देवानन्दात्मज-महेशानन्दशर्म्मा
नन्दप्रयाग बद्रिकाश्रमनिवासीने
मुंबईमें
छपवाकर प्रकाशित किया.

संवत् १९६८, शके १८३३.

(पञ्चमबार १००० प्रति.)

Printed at the "Shri Venkateshwar" Steam Press. Khetwadi
7th Khambatta Lane, Bombay.

जन्म १९२७ सम्वत्

श्रीपंडितदेवानन्दात्मजमहेशानन्दशर्म्मा,
नन्दप्रयाग श्रीबद्रिकाश्रमनिवासी.

भूमिका ।

सम्पूर्ण धर्मानुरागी सज्जन महाशयोंको विदित हो कि, हमारे सनातनधर्म-शास्त्रोंमें तीर्थोंकी बडी महिमा लिखी है, जिनकी यात्रासे मनुष्योंके अनेक जन्मोंके पाप दूर होकर चारों पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं । केवल धर्मशास्त्रोंमेंही नहीं वरन् "वेदों" में भी तीर्थोंकी महिमा पाई जातीहै । यथा "नमस्तीर्थ्याय च" यजु० अध्याय १६. जब कि हमारे ईश्वरका श्वासभूत वेद, तीर्थोंका प्रतिपादन करता है, तब सन्देहही क्या है ? जो तीर्थोंके सत्य होनेके लिये प्रमाण दिये जावें। भरतखण्डके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिणमें बडे २ प्रसिद्ध तीर्थ प्रत्यक्ष फल-दाता हैं, यथा—पूर्वमें जगन्नाथ, पश्चिममें द्वारका, दक्षिणमें रामेश्वर और उत्तरमें साक्षात् भगवान् बदरीविशाल कलियुगमें मुक्ति देनेवाले विराजते हैं । इन चारों धामोंके अवान्तरमें और भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं, परन्तु देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध, गन्धर्व, सुर, नर और मुनियोंका सेवित परम पुण्यप्रद यह श्रीबद्रीक्षेत्र अर्थात् नरनारा-यणका आश्रम सर्वश्रेष्ठ है । वीतराग होकर हमारे सम्पूर्ण पुरुष इसी क्षेत्रमें निवास करके परमसायुज्यको प्राप्त हुए । सत्य तो यह है कि, अनन्त महापुरु-षोंकी तपस्यासे इस स्थानमें ऐसा प्रभाव होगया है कि, इस सिद्धक्षेत्रके दर्शनसेही मनुष्यका चञ्चल मन शांत हो जाता है और हियेके कपाट खुल जाते हैं जिससे परम ज्योतिका प्रकाश आत्मामें जगमगाने लग जाता है. एक हमही क्या दर्शक-मात्रसे जानते हैं । यदि इस आधुनिक समयमें भी यात्रा है तो इसी पहाडी शीतल मार्गकी यात्रा है साधारण जल पान करनेसे मनुष्यका क्रोध दूर हो जाता है।

और जब महीनोंतक यात्रा करते हुए पुण्यसलिला भागीरथी, अलकनन्दा, मन्दाकिनी और नन्दाकिनी गंगाओंके दिव्य प्रभावके दर्शन और पान करनेको अमृततुल्य "गंगाजल" मिलजाता है । तथा कैलासनाथसे सेवित गौरीगुरुके हिमरंजित शिखरोंके दर्शन करनेसे किसका मन स्वच्छ न होगा ? फिर नरना-रायण तथा ऋषि आश्रमोंके दर्शनोंकी तो क्या कही जावे ? वह तो यही ग्रंथ कह सक्ता है । जिस अहोभाग्य मनुष्यने एकबार भी इस तीर्थराजका दर्शन कर-लिया है वह यहांकी महिमाको जान सक्ताहै । इस क्षेत्रका माहात्म्य २९००० सहस्रों श्लोकोंमें केदारखण्डके नामसे विख्यात है और वह स्कन्दपुराणान्तर्गत है. सम्पूर्ण क्षेत्रका माहात्म्य और उत्पत्ति उसीसे ज्ञात हो सक्ती है, किन्तु वह ग्रन्थ

अभी कहींभी प्रकाश नहीं हो-सका है अतिपरिश्रमसाध्य होनेसे अवतक हम भी उसको प्रकाश नहीं करवाय सके (किसी समय उसका भी अनुवाद किया जायगा) इसी कारण उस ग्रन्थमेंसे श्रीवद्री केदारके समस्त तीर्थोंका माहात्म्य बोध होने योग्य २० अध्याय संग्रह किये हैं जो भाषाटीकासहित प्रकाश हुआ है।

इस ग्रन्थको जौन महद्भाग्य गृहस्थ पाठ कर सकें अथवा श्रवण करें उनको तीर्थके दर्शन न कर सकनेपर भी बद्रीनाथजीके दर्शन कियेका महत् फल प्राप्त हो सक्ता है और दर्शनार्थी यात्रीगण इस ग्रन्थको यात्रा आरम्भहीमें एक २ प्रति अपने पास रख लें तो उनको इस ग्रन्थकी मर्यादासे यात्रा करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा क्योंकि नियमसे की हुई यात्रा कल्याणकारक होतीहै और तवही संपूर्ण फलोंकी भी प्राप्ति होतीहै । यह पुस्तक सभी सद्गृहस्थोंके लिये उपयोगी हुई है । इसके पाठ करनेसे मनुष्योंके चित्तमें शांति विराजने लग जाती है ।

इस ग्रन्थकी भाषाटीका करके नन्द्रप्रयागनिवासी श्रीपण्डित देवानंदात्मज पण्डित महेशानन्दजी शर्म्मा अध्यक्ष श्रीवदरीनाथभक्तिरसामृतकार्यालयको समर्पण करदिया है कारण कि इनहीकी प्रेरणासे यह सर्वाङ्गसम्पन्न टीका की गई है ।

इस ग्रन्थमें यात्रियोंका मानसिक संकल्प, यात्राविधान, मङ्गलश्राद्ध, तीर्थदर्शन, मार्गवृत्तांत, यात्रोद्यापन आदिक अनेक विषयोंका आवश्यक संग्रह हुआ है यात्री-गणोंको इसके देखनेसे वडा लाभ होगा ऐसी हमको दृढ आशा है ।

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि, यदि कहीं इसमें भूल पावें तो अपनी उदारतासे उसको सुधार लें कारण कि, सर्वज्ञ परमेश्वरही हैं । यात्रियोंसे प्रार्थना है कि, इस ग्रन्थका पाठ कर एक पग मात्र यात्राका फल मुझे देकर पवित्र करें ।

विज्ञप्तिः ।

अयि सहृदयाः ! विदितमेवेदं प्रायः सर्वेषां कारुणिकचित्तवृत्तीनां महोदयानां यदयमस्माकं "भक्तिरसामृतकार्य्यालयः" श्रीमतां करुणातरङ्गितापाङ्गनेत्रावलोकेन प्रतिदिनं वृद्धिं पुष्णाणो वरीवर्ति । प्रकाशयति चाऽयं पूर्णचन्द्र इवाऽनेकविधं कलाकौशलम् । एकतः शुद्धशिलाजतुप्रभृतयः कैलासप्रभवाः सद्यःफलदा महौषधयोऽन्यतश्च बदरीश्वरगुणगुम्फिताः संसृतिचक्रपराभवहारिणः शुभदर्शनाः केदारखण्डादयो बृहद्ग्रन्था अतिदुर्ल्लभाः सुलभा इव भान्ति । कुतश्चिच्चाऽनेकभाषानिबद्धाः सारसम्पन्ना अदृष्टपूर्वारत्नप्रभादयो महोपन्यासाः, ज्योतिषनैतिकवैद्यकादिग्रन्थाश्च विद्योतन्तेतराम् । तानीमानिवस्तूनि श्रीमतामाज्ञापत्रप्राप्तिसमकालमेवोचितमूल्यविभागेन प्रेष्यन्त इति निवेदयति भवत्कृपाभाजनम् ।

पं॰ महेशानन्दशर्म्मा, भक्तिरसामृतकार्य्यालयाध्यक्षः,

गढ़वाल देश—नन्दप्रयाग.

नारद.

भगवान्
श्री बद्रीनारायण.

लक्ष्मी

गरुड़.

नर

नारायण

सनकादिक

योगी आश्रम
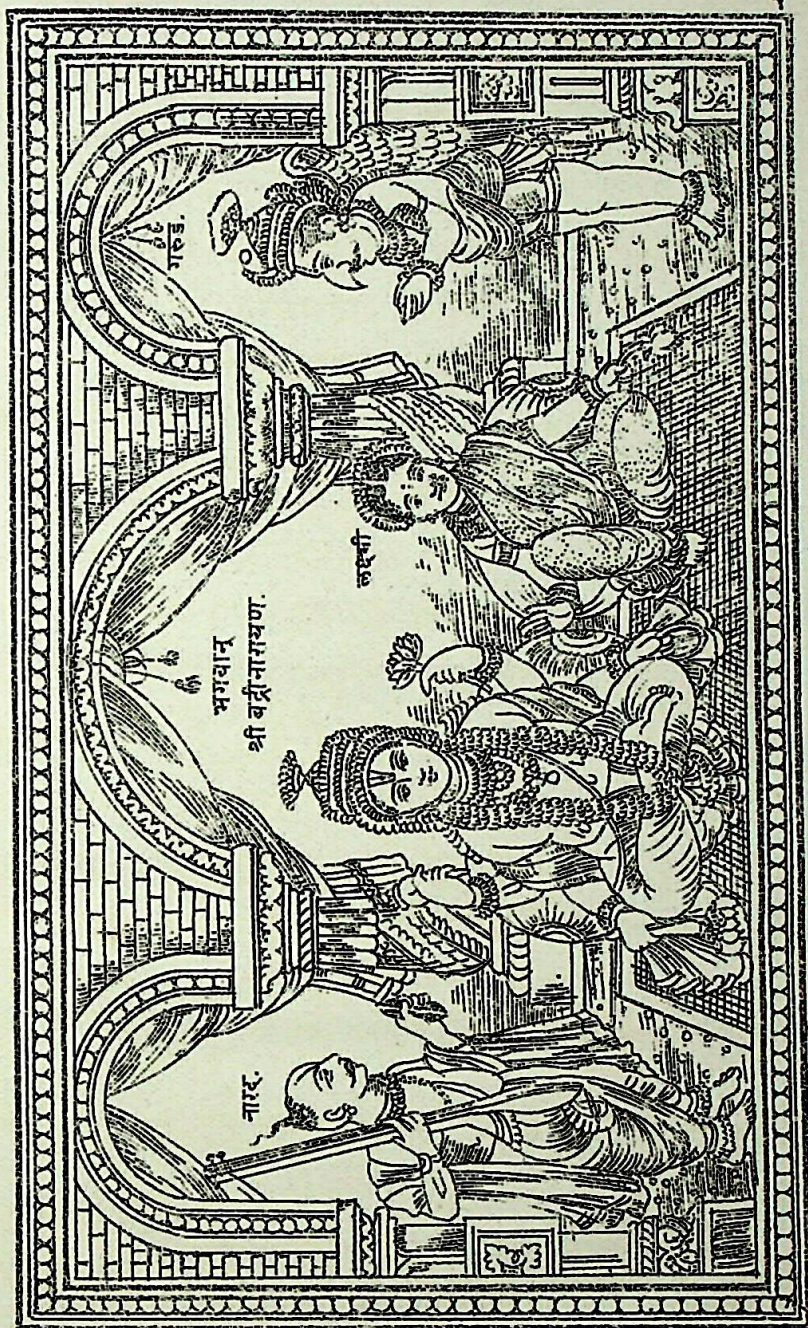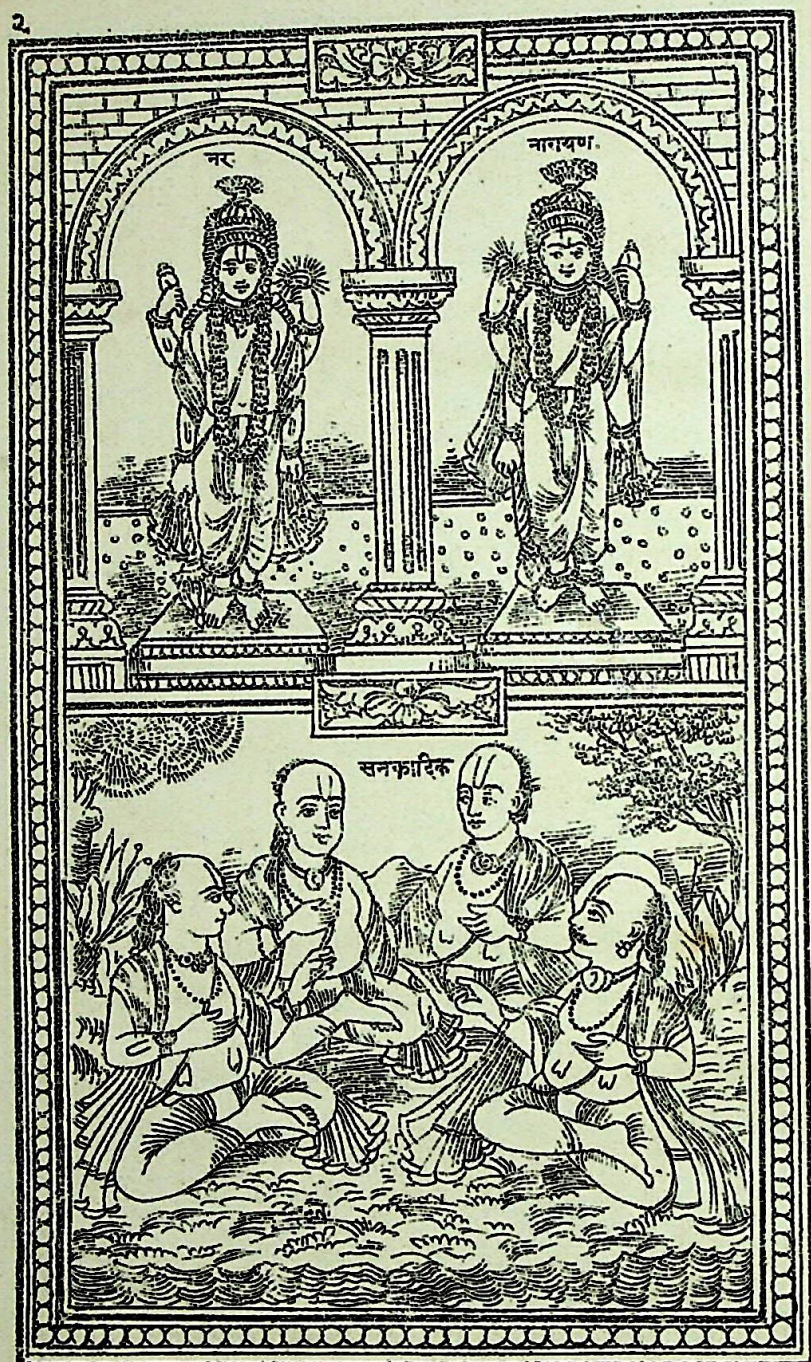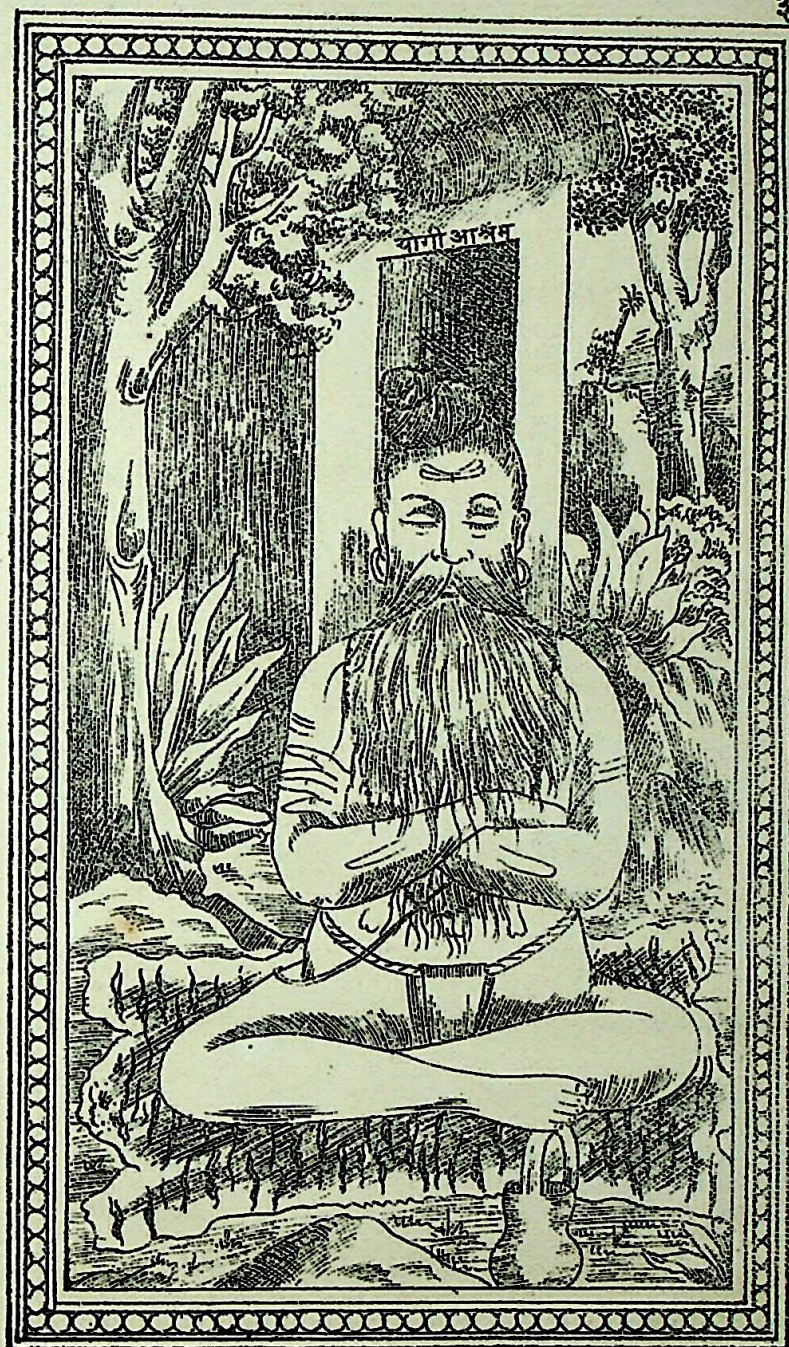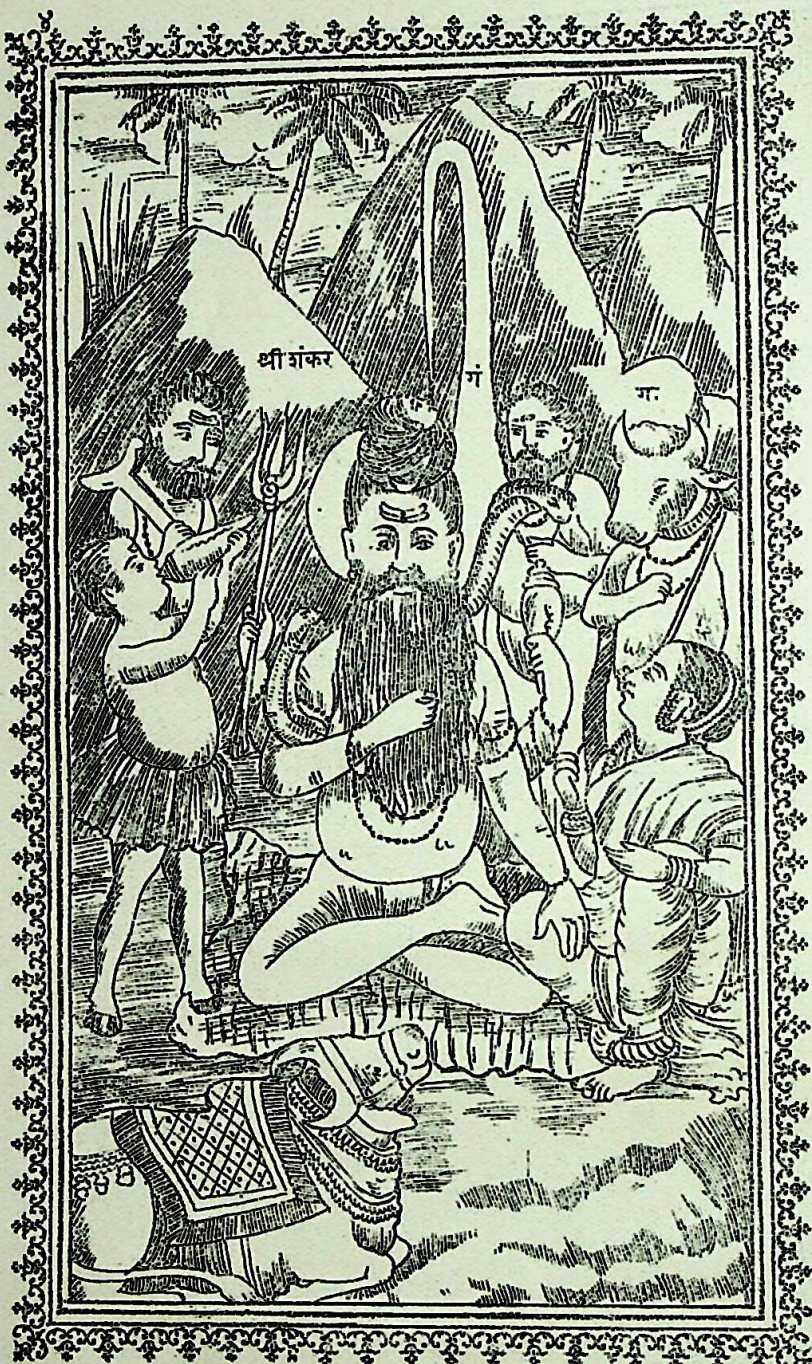
॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहितं

बदरीमाहात्म्यं प्रारभ्यते.

अरुन्धत्युवाच ।

धन्यास्मि कृतपुण्यास्मि यस्मान्मे पतिरीश्वरः ॥
मत्समा नास्ति त्रैलोक्ये देवी वा मानुषी हि वा ॥ १ ॥

दोहा–व्यापक विश्व अनादि अज, ब्रह्म सच्चिदानंद ॥
जन ज्वालापरसादके, दूर करहु दुखद्वंद ॥ १ ॥

अरुन्धती बोली, मैं धन्य हूं, मैं पुण्यात्मा हूं जिस कारण मेरे पति ईश्वर हैं मेरी समान त्रिलोकीमें दैवी वा मानुषी कोई नहीं है ॥ १ ॥

पिबन्त्यास्त्वन्मुखाम्भोजात्तृप्तिर्नास्ति कथामृतम् ॥
न वा क्षुधा न मां तृष्णा बाधते भगवन् मुने ॥ २ ॥

हे भगवन् ! हे मुने ! तुम्हारे मुखरूपी कमलसे निकलेहुए कथारूपी अमृतको पीतीहुई मुझको भूंख और प्यास बाधा नहीं देती ॥ २ ॥

बदरीवनमाहात्म्यं वद भर्तः कृपान्वितः ॥
यथा प्राह महादेवो महेशानीं तपोनिधे ॥ ३ ॥

हे तपोनिधे ! हे भर्तः ! कृपा करके बदरीवनके माहात्म्यको कहो, जिस प्रकार शिवजीने पार्वतीसे कहा था ॥ ३ ॥

कियन्मानं तु तत् क्षेत्रं किं फलं तत्र जायते ॥
केन केन तपस्तप्तं बदर्य्याश्रममंडले ॥ ४ ॥

वह क्षेत्र कितना बडा है, क्या उसका फल है और उस बदर्य्याश्रममंडलमें किस किसने तप किया है ॥ ४ ॥

एतत्सर्वं समासेन कथयस्व प्रसादतः ॥
यत्र गंगा ब्रह्मरूपा संस्थिताऽघौघनाशिनी ॥५॥

यह सब संक्षेपसे प्रसन्नतापूर्वक मेरे प्रति वर्णन करो, जहां पापसमूहको नाश करनेवाली गंगाजी ब्रह्मरूपसे स्थित हैं ॥५॥

सूत उवाच ।

इति पृष्टो ह्यरुन्धत्या भगवान् द्रुहिणात्मजः ॥
क्षणं ध्यात्वा नमस्कृत्य महेशं प्राह सुन्दरीम् ॥६॥

इस प्रकार अरुन्धतीके बूझनेपर भगवान् वसिष्ठजी क्षणमात्र ध्यान करके व शिवजीको प्रणाम करके सुन्दरीसे कहनेलगे ॥६॥

वसिष्ठ उवाच ।

शृण्वरुंधति वक्ष्यामि यथाह भगवाञ्छिवः ॥
तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सावधानावधारय ॥ ७ ॥

हे अरुंधति! जिस प्रकार भगवान् शिवने कहा है, मैं तुमसे कहता हूं सुनो और सावधान होकर धारण करो ॥ ७ ॥

श्रुत्वा तत्पंचमाहात्म्यं पुनः पप्रच्छ पार्वती ॥
महादेवं महात्मानं भक्तितत्परमानसा ॥ ८ ॥

पाँच माहात्म्योंको सुनकर भक्तिमें तत्परमनवाली पार्वती महात्मा शिवजीसे फिर पूँछने लगी ॥ ८ ॥

बदरीवनमाहात्म्यं कथयामास पार्वतीम् ॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि पुण्यं पापविनाशनम् ॥ ९ ॥

बदरीवनके माहात्म्यको पार्वतीसे शिवजीने कहा उस पाप-नाशक पुण्यके दाता माहात्म्यको तुम्हारे प्रति कहता हूं ॥९॥

कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नन्दगिरिर्भवेत् ॥
तावत्क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १० ॥

कण्वऋषिके स्थानसे लेकर जहांतक नन्दगिरिपर्वत है वहां-तक पुण्य तथा भुक्ति मुक्तिका देनेवाला वह क्षेत्र है ॥ १० ॥

कण्वोनाम महातेजा महर्षिर्लोकविश्रुतः ॥
तस्याश्रमपदे गत्वा भगवन्तं रमापतिम् ॥ ११ ॥

महातेजस्वी महर्षि कण्व लोकमें विख्यात हैं उनके आश्र-ममें जाकर और रमापति भगवान्‌को नमस्कार करके ॥ ११ ॥

दुरात्मानोऽपि गच्छंति पदं दुःखविवर्जितम् ॥
नन्दप्रयागके स्नात्वा संपूज्य च रमापतिम् ॥१२॥
किं किं न जायते तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥
धन्याः कलियुगे घोरे ये नरा बदरीं गताः ॥ १३ ॥

दुरात्मा पुरुषभी दुःखसे छूटकर अच्छे पदको प्राप्त होते हैं, नन्दप्रयागमें स्नान करके और रमापतिका पूजन करके क्या कुछ उसको नहीं मिलता? अर्थात् सब कुछ मिल सकता है १२

और मुक्ति तौ उसके हाथमें स्थित हो जाती है. इस घोर कलियुगमें वे मनुष्य धन्य हैं जो बदरीवनको गये हैं ॥ १३ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवा हरिभक्तिरताः प्रिये ॥
निवसन्ति स्थले रम्ये नानातीर्थविराजिते ॥ १४ ॥

हे प्रिये अरुन्धति ! अनेक तीर्थोंसे विराजित जिस रमणीक स्थलमें हरिभक्तिमें रतहुए ब्रह्मादि देवता रहते हैं ॥ १४ ॥

धन्यः स वै हि लोकेषु यो गच्छेद्बदरीं नरः ॥
न तस्य पुण्यमहिमावर्णनाय च शक्यते ॥ १५ ॥

संसारमें वह मनुष्य धन्य है जो बदरीवनको जाय, उसके पुण्यकी महिमाका वर्णन करनेको कोई भी समर्थ नहीं है १५॥

मनसापि च ये लोका बदरीवनमाश्रिताः ॥
ते वै वासफलं देवि प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ १६ ॥

हे देवि! जिन मनुष्योंने मनसेभी बदरीवनका आश्रय लियाहै वे मनुष्यभी सफलताको प्राप्त होंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं १६॥

ये तत्र वासिनो लोका बदर्य्याश्रममंडले ॥
विष्णुरूपधराः सर्वे भवन्ति वरवर्णिनि ॥ १७ ॥

हे अरुंधति ! जो मनुष्य उस बदरी आश्रममें वास करते हैं वे सब साक्षात् विष्णुरूपधारी हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥

चतुर्धेदं समाख्यातं क्षेत्रं परमपावनम् ॥
स्थूलं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं चेति प्रकीर्तितम् ॥१८॥

यह चार प्रकारका क्षेत्र परमपवित्र कहा है तथा स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और शुद्ध भी कहा है ॥ १८ ॥

योजनत्रयविस्तारं दीर्घं द्वादशयोजनम् ॥
अगम्यं पापिनां तद्वै महदैश्वर्यदायकम् ॥ १९ ॥

तीन योजन चौंडा और बारह योजन लम्बा है और पापियोंको अगम्य है तथा महाऐश्वर्यका देनेवाला है ॥ १९ ॥

मनसापि स्मरेयुर्ये विशालबदरीति च ॥
तेऽपि तद्वासिनो ज्ञेया मृता मुक्तिमवाप्नुयुः ॥ २० ॥

जो मनुष्य विशाल बदरी इसप्रकार मनसेभी स्मरण करतेहैं उनको भी वहांका वासी जानो और मरकर उनकी मुक्ति होगी ॥ २० ॥

गंधमादनबदरीनरनारायणाश्रमः ॥
कुबेरादिशिलारम्यो नानातीर्थविराजितः ॥ २१ ॥

जो गंधमादन, बदरीक्षेत्र, नारायणआश्रम, कुबेरशिला आदि अनेक तीर्थोंसे विराजमान है ॥ २१ ॥

सर्वैर्देवगणैर्युक्तो नानामुनिगणान्वितः ॥
चिह्नं तत्र प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥ २२ ॥

सब देवसमूहसे युक्त और अनेक मुनियोंसे शोभायमान है और उस आश्रमका चिह्न मैं तुम्हारे प्रति कहताहूं जिससे तुम्हें विश्वास हो ॥ २२ ॥

तप्तोदकमयी धारा वह्नितीर्थसमुद्भवा ॥
वर्त्तते तत्र सुभगे देवानामपि दुर्लभा ॥ २३ ॥

हे सुभगे ! देवताओंकोभी दुर्लभ वह्नितीर्थसे निकली हुई तप्त जलकी धारा उस मनोहर स्थानमें स्थित है ॥ २३ ॥

बदरीनाथनैवेद्यं यो मोहात्तु परित्यजेत् ॥
चाण्डालादधमो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ २४ ॥

जो मनुष्य बदरीनारायणके नैवेद्यको मोहसे त्यागता है उस मनुष्यको चाण्डालसेभी अधम और सब धर्मोंसे बहिष्कृत जानना चाहिये ॥ २४ ॥

लक्ष्मीः पचति नैवेद्यं भुंक्ते नारायणः स्वयम् ॥
चाण्डालेनापि संस्पृष्टं न दोषाय भवेत्क्वचित्॥२५॥

जिस नैवेद्यको लक्ष्मी पक्क करती है और नारायण स्वयं भोजन करते हैं । उस नैवेद्यको चाण्डालके छूनेपरभी कुछ दोष नहीं होता ॥ २५ ॥

येन भुक्तं तु नैवेद्यं श्रीविष्णोः परमात्मानः ॥
स वै लोके परब्रह्मस्वरूपो नात्र संशयः ॥ २६ ॥

जिसने श्रीविष्णु परमात्माका नैवेद्य भक्षण किया वही संसारमें परब्रह्मस्वरूप हुआ इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ २६ ॥

बदरीनाथमूर्तिं वै मनसापि स्मरेत्तु यः ॥
तेन तप्तं तपस्तीव्रं दत्ता तेन धराखिला ॥
माषमात्रं तु यो दद्यात्सुवर्णं रजतं हि वा ॥ २७॥

जो बदरीनाथकी मूर्तिको मनमेंभी स्मरण करता है उसने मानो सब तप कर लिया अथवा जिस मनुष्यने मासेभर भी सुवर्ण अथवा चांदी उस स्थानमें दी मानो उसने भी तीव्र तप किया और संपूर्ण पृथ्वी देदी ॥ २७ ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते ॥
कणमात्रमपि जलं पितॄनुद्दिश्य येन वै ॥२८॥

पितरोंके निमित्त जिस मनुष्यने कणमात्र भी जल दिया वह सहस्रों (हजारों) जन्मतक दारिद्री नहीं होता ॥२८॥

दत्तं तेन कृतं सर्वं पितॄणां मुक्तिकारणम् ॥
लोभमोहसमाविष्टे कलौ धर्मविवर्जिते ॥ २९ ॥

लोभ मोहसे युक्त और धर्मसे वर्जित कलियुगमें उसने सब कुछ दे दिया और सब कुछ कर दिया यही पितरोंकी मुक्तिका कारण है ॥ २९ ॥

नरास्त एव धन्याःस्युर्बदरीं ये गताःप्रिये ॥
गमिष्यामि विशालां वै योवै कथयतेऽनिशम् ॥३०॥

हे प्रिये ! वे मनुष्यही धन्य हैं जो बद्रिकाश्रमको गये. बदरीनारायणको जाऊंगा जो मनुष्य इस प्रकार रात दिन कहताहै ३०

सोऽपि तत्फलमाप्नोति बदरीनाथदर्शनात् ॥
बदरीवासिनो लोका विष्णुतुल्या न संशयः ॥३१॥

उसकोभी वही फल प्राप्त होता है जो बदरीनाथके दर्शन करनेसे होता है, बदर्य्याश्रममें रहनेवाले मनुष्य विष्णुतुल्य हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ३१ ॥

येषां दर्शनमात्रेण पापराशिःप्रणश्यति ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन घोरे कलियुगे नरैः ॥ ३२ ॥

जिनके दर्शनमात्रसे पापराशि नाश हो जातीहै इसवास्ते घोर कलियुगमें प्रयत्नसे मनुष्योंको ॥ ३२ ॥

कर्तव्यो बदरीवासःपापिनामपि मुक्तिदः ॥
न काशी न तथा कांची मथुरा न गया तथा ॥ ३३ ॥

बदर्य्याश्रममें वास करना चाहिये, वह पापियोंको भी मुक्ति

का देनेवाला है । इसकी समान न काशी है, न कांची है, न मथुरा है, न गया है ॥ ३३ ॥

प्रयागश्च तथाऽयोध्या नावन्ती कुरुजाङ्गलम् ॥
अन्यान्यपि च तीर्थानि यस्यासौ कलिनाशिनी ३४

तथा प्रयाग, अयोध्या, अवन्ती, कुरुक्षेत्र और और भी तीर्थ नहीं हैं जैसी कि पापनाशिनी ॥ ३४ ॥

बदरीतरुणा या वै मण्डिता पुण्यदा स्थली ॥
यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्ठा गंगा पापौघनाशिनी ॥ ३५॥

बदरीतरुसे युक्त यह पवित्रस्थली स्थित है । जहां पापसमूहकी नाश करनेवाली साक्षात् गंगा स्थित है ॥ ३५ ॥

विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
यत्र ब्रह्मा च रुद्रश्च विष्णुश्चैव सुरोत्तमः ॥ ३६ ॥

और इस स्थानमें संपूर्ण पापनाशक विष्णुका निवास है जहां ब्रह्मा, रुद्र, सुरोत्तम विष्णु हैं ॥ ३६ ॥

गंधर्वाप्सरसश्चैव किन्नरा गुह्यकास्तथा ॥
प्रमथा यक्षरक्षांसि वसन्ति हरिमानसाः ॥ ३७ ॥

गंधर्व,अप्सरा, किन्नर, गुह्यक, प्रमथ, यक्ष और राक्षसादि हरिमें तत्पर मनसे स्थिर हैं ॥ ३७ ॥

एतत्परात्मकं क्षेत्रं न त्याज्यं मुक्तिमिच्छता ॥
यावत्प्राणाःशरीरेऽस्मिन्यावदिन्द्रियशुद्धता ॥३८॥

मुक्तिकी इच्छावाले मनुष्यको यह परात्मक क्षेत्र नहीं त्यागना चाहिये । जबतक इस शरीरमें प्राण हैं, जबतक इन्द्रियोंकी शुद्धि है ॥ ३८ ॥

गात्राणि यावच्छैथिल्यं नाप्नुवन्ति महात्मभिः ॥
बदरीगमने तावद्विलम्बो न विधेयकः ॥ ३९ ॥

जबतक शरीरमें शिथिलता प्राप्त न हो तबतक महात्मा पुरुषोंको बदरीनारायणके जानेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये ३९॥

चरणानां च साफल्यं कुर्याद्बदरिकागमात् ॥
नेत्रयोश्चैव साफल्यं कुर्याद्विष्णोश्चदर्शनात् ॥ ४० ॥

बदर्य्याश्रममें चलकर चरणोंकी सफलता करे और विष्णुके दर्शनसे नेत्रोंको सफल करे ॥ ४० ॥

तस्य वै जन्म सफलं तस्यैव सफलं तपः ॥
बदरीवनमध्यस्थो देव एव न संशयः ॥४१॥

उसीका जन्म सफल है, उसीका तप सफल है, बदरीवनमें स्थित हुआ पुरुष देवताही है इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ४१ ॥

यस्तं नमति भक्त्या वै तस्य पापक्षयो भवेत् ॥ ४२॥

जो उनको भक्तिसे प्रणाम करताहै निश्चय उसके पाप नाश हो जातेहैं ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे बदरीमाहात्म्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

नन्दप्रयागे तु यथा बभूव मम वल्लभे ॥
यज्ञो नन्दस्य राज्ञो वै तच्छृणुष्व समाहिता ॥ १ ॥

हे मेरी प्यारी ! नन्दप्रयागमें जिस प्रकार नन्दराजाका यज्ञ हुआ सो मैं तुमसे कहता हूं एकाग्र मनसे सुनो ॥ १ ॥

नन्दो नाम महाराजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥
यज्ञं चकार विधिवद्बह्वन्नं भूरिदक्षिणम् ॥ २ ॥

नन्दनामवाला राजा धर्मात्मा और सत्यवादी था वह राजा विधिपूर्वक बडी दक्षिणा और बडे अन्नवाले यज्ञको करता हुआ २

तत्र ब्रह्मादयो देवा भागं स्वं स्वं पुरा दधुः ॥
मूर्तिमन्तो महात्मानो भक्त्या तस्य महीपतेः ॥ ३ ॥

उस स्थानमें ब्रह्मादिदेवताओंने पहीलेही अपने अपने भागको धारण किया और वे महात्मा उसकी भक्तिसे मूर्तिमान् होकर स्थित हुए ॥ ३ ॥

नाम चक्रुश्च सन्तुष्टास्तन्नाम सफलं कृतम् ॥
संगमे स्नानमात्रेण शुद्धा नन्दालकनन्दयोः ॥४॥

सन्तुष्ट हुए उन देवताओंने उसीके नामसे उस क्षेत्रको विख्यात किया. उस नन्दा और अलकनन्दाके संगममें स्नानमात्रसे मनुष्य शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४ ॥

तत्र सन्निहितो विष्णुर्मया सह शिवेन च ॥
ततो योजनके देवि शिवलिंगं सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥

वहां विष्णु और शिवकी स्थिति है। हे देवि ! वह तीर्थ एक योजनमें है और वहां एक उत्तम शिवलिंग है ॥ ५ ॥

वसिष्ठेशो महादेवो मया संराधितः पुरा ॥
तत्र प्राणव्यपायेन शिवो भवति न संशयः ॥ ६ ॥

पहिले मैंने वसिष्ठेश महादेवकी पूजा की थी, उस स्थानमें प्राण छोडकर मनुष्य शिव हो जाताहै इसमें कुछ संदेह नहीं ६ ॥

तत उत्तरदिग्भागे नदी परमपावनी ॥
व्रीहिका नाम विख्याता सर्वपापहरा मता ॥ ७ ॥

उसके उत्तरदिग्भागमें सर्व पापोंकी हरनेवाली और परम-पवित्र नदी व्रीहिका नामसे विख्यात है ॥ ७ ॥

ततो वै विरहवती नदी पापप्रमोचनी ॥
विरहेण पुरा तत्र सत्यास्तप्तं शिवेन हि ॥ ८ ॥

उसके पीछे पापप्रमोचनी विरहवती नदी है। पहिले वहाँ सतीके विरहमें शिवजीने तप किया था ॥ ८ ॥

ततःप्रभृति कल्याणि नाम्ना विरहवती नदी ॥
तपस्तप्तस्य देवस्य प्रत्यक्षं चण्डिकाभवत् ॥ ९ ॥

उस दिनसे लेकर हे कल्याणि ! उसका विरहवती नदी नाम हुआ, उन शिवके तप करनेपर चण्डिका देवी प्रत्यक्ष हुई थी॥९॥

सा वै जगाद देवेशं भविष्यामि गिरेर्गृहे ॥
ततो मां सर्वलोका वै वदिष्यन्ति गिरेः सुताम्॥१०॥

और शिवजीसे बोली मैं गिरि (पर्वत) राजके घरमें जन्म लूंगी, तबसे सब लोग मुझको गिरिसुता कहेंगे ॥ १० ॥

भविष्यामि पुनर्भार्या तव देव महेश्वर ॥
इति श्रुत्वा वचो देव्या हृष्टरोमा सदाशिवः ॥ ११ ॥

हे महेश्वर देव ! तब मैं तुम्हारी भार्य्या (स्त्री) हूंगी। इस प्रकारकी वाणीको सुनकर सदाशिव प्रसन्नरोम होगये ॥ ११ ॥

जगाम कैलासगृहे अंशेनैकेन तत्र हि ॥
विरहेश्वरो महादेवः सर्वकामफलप्रदः ॥ १२ ॥

फिर शिवजी कैलासको गये और एक अंशसे वहीं स्थित रहे। सब कामना और फलके देनेवाले विरहेश्वरनामसे वि-ख्यात हुए ॥ १२ ॥

स्नानं दानं च मरणं त्रयं तत्र विशिष्यते ॥
ततः पूर्वे समाख्यातं मणिभद्रसरः परम् ॥ १३ ॥

स्नान, दान तथा मरणका वहां अधिक फल होता है, उसके पूर्वभागमें मणिभद्र नामसे एक सरोवर विख्यात है ॥ १३ ॥

तत्र त्रिरात्रमाविश्य मणिभद्रं लभेन्नरः ॥
प्राप्ते तस्मिन्मणौ वीरे न प्राप्यं किमु सुन्दरि ॥ १४ ॥

वहां तीन रात्रि रहकर मणिभद्रकी प्राप्ति हो जाती है। उस मणिवीरके प्राप्त होनेपर मनुष्यको क्या कुछ नहीं मिलता? १४॥

ततो दक्षिणतो भद्रे महाभद्रा नदी परा ॥
तत्रैकचिह्नमाख्येयं शृणु स्वस्थे न चेतसा॥ १५॥

उस मणिभद्रके दक्षिणभागमें महाभद्रा नामकी नदी है उसका मैं चिह्न (लक्षण) कहता हूं स्वस्थचित्तसे सुनो ॥ १५॥

तत्रैको वटवृक्षोऽस्ति सप्तसप्तपरिच्छदः ॥
पत्राणि तानि दृष्ट्वा वै दृष्टिस्तम्भः प्रजायते ॥ १६॥

वहां सात सात पत्तोंवाला वटवृक्ष है उसके पत्तोंको देखकर मनुष्यकी दृष्टि स्तंभ हो जाती है ॥ १६ ॥

तत्रैव सूर्यतीर्थं च चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥
अन्यच्छृणु महातीर्थं गव्यूतौ पूर्वदिक्स्थितम्॥ १७॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका देनेवाला सूर्यतीर्थभी वहीं है। औरभी महातीर्थ कहता हूं सुनो, जो दो कोश पूर्व स्थित है १७॥

तत्र गाणेश्वरी मूर्तिः सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
दण्डाश्रमोऽपि तत्रैव यत्र राजा पुरा प्रिये ॥ १८॥

संपूर्ण पापोंकी नाश करनेवाली गणेशजीकी मूर्ति भी वहीं स्थित है और दण्डाश्रमभी वहीं है । हे प्रिये ! जहां पहिले राजा ॥ १८ ॥

दण्डो नाम्ना रवेःकुण्डे तेपे परमकं तपः ॥
यन्नाम्ना दण्डकारण्यं ख्यातमस्ति त्रिलोकके ॥ १९ ॥

दण्ड नामसे विख्यात था उसने सूर्यकुण्डपर परम तप किया, उसीके नामसे त्रिलोकीमें दण्डकारण्यके नामसे वह क्षेत्र विख्यात हुआ ॥ १९ ॥

सोऽयं दण्डो माहाबाहुर्जजाप परमं शिवम् ॥
दशवर्ष शताद्दूर्ध्वं जगाम शिवमन्दिरम् ॥ २० ॥

वह यह महाबाहु दण्डराजा परमशिवके मंत्रका जपने लगा और दश हजार वर्ष जप करके साक्षात् शिवमन्दिरको गया २० ॥

दण्डाश्रमेऽपि यो मर्त्यः स्नानं दानं जपं क्रियाम् ॥
तत्कोटिगुणसंख्यातं भवतीति शिवेरितम् ॥ २१ ॥

दण्डकाश्रममें भी जो मनुष्य स्नान, दान,जपकी क्रियाको करता है उसका करोडगुणा फल होताहै, यह शिवजीने कहाहै २१ ॥

अलकनन्दोत्तरे तीरे वृक्षगुल्मलतावृते ॥
बिल्वेश्वरो महादेवस्तत्र तिष्ठति नित्यशः ॥ २२ ॥

अलकनन्दा नदीके उत्तरकिनारे वृक्ष, गुल्म, लतासे ढके-हुएमें बिल्वेश्वर महादेव वहां नित्य निवास करते हैं ॥ २२ ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि निष्कंगे बिल्ववृक्षकः ॥
बदरीफलमानानि फलानि श्रीफले प्रिये ॥ २३ ॥

हे प्रिये ! उसका चिह्न कहता हूं सुन । बिल्ववृक्षके निकट बदरीफलके समान श्रीफल होते हैं अर्थात् बेलके फल बडे बेरके समान होते हैं ॥ २३ ॥

ततो गरुड गंगायां गंगाया दक्षिणे तटे ॥
स्नात्वा देवं समभ्यर्च्य पक्षीशं विष्णुरूपिणम् ॥२४॥

तत्पश्चात् गंगाके दक्षिणतट गरुडगंगामें स्नान करके और विष्णुरूपी गरुडदेवका पूजन करके ॥ २४ ॥

पंचकोटिसहस्राणां वर्षाणां वसते चिरम् ॥
विष्णुलोके योगिगम्ये ततो योगिषु जायते ॥ २५॥

मनुष्य योगिगम्य विष्णुलोकमें पांच करोड हजार वर्षतक वास करता है; तिसके उपरान्त वह योगियोंमें उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥
गरुडगंगाशिलाभागो यत्र तिष्ठति मत्प्रिये ॥ २६ ॥

हे मेरी प्रिये ! तत्काल विश्वास दिलानेवाला औरभी उपाख्यान कहता हूं, जहां गरुडगंगाके शिलाका भाग स्थितहै २६ ॥

न तत्र सर्पजभयं विद्यते न तथा विषात् ॥
विषग्रस्तोऽपि यो मर्त्यो जले घृष्टं पिबेत्तु वै ॥ २७ ॥

वहां न सर्पका भय है, न विषका भय है, विषसे ग्रस्त हुआ भी जो मनुष्य उस शिलाको जलमें घिसकर पीता है ॥ २७ ॥

न तत्र सर्पविषजं भयं भवति कर्हिचित् ॥
ततो गणेशनद्यां वै स्नात्वा पापक्षयो भवेत् ॥२८ ॥

उसको सर्पके विषसे उत्पन्न हुआ भय कभी नहीं होता, इसके पीछे गणेशगंगामें स्नान करनेसे मनुष्यके पाप और ताप सभी नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि सिंदूराभासमृत्तिका ॥
तद्धारणात् स मनुजो गणेशो नात्र संशयः॥२९॥

वहांका चिह्न कहता हूं, वहांकी मिट्टी सिंदूरकी समान है। उस मिट्टीको धारण करनेसे मनुष्य गणेश हो जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ २९ ॥

दिव्या महर्षयो यत्र गायन्ति साम नित्यशः ॥
शृण्वन्ति च महात्मानो दुरितैर्ये विवर्जिताः ॥ ३० ॥

दिव्य महर्षि वहां नित्य सामवेदका गान करते हैं और पापरहित महात्मा लोग उसको सुनते हैं ॥ ३० ॥

ततो गंगोत्तरे तीरे नाम्ना चर्मण्वती नदी ॥
तस्यां स्नात्वा भवेन्मर्त्यो गणो गणसुपूजितः ॥३१॥

फिर गंगाजीके उत्तर किनारे चर्मण्वती नदी है, उस नदीमें स्नान करके मनुष्य गणोंसे पूजित गण हो जाता है ॥ ३१ ॥

ततोऽनंगश्रियो राज्ञ आश्रमो मुनिपूजितः ॥
तत्र वै चण्डिके मर्त्यो मृतश्चंडीपुरे वसेत् ॥३२॥

इसके पीछे वहां मुनियोंसे पूजित अनंगश्रीराजाका आश्रम निश्चय करके वहां चंडीके स्थानपर मनुष्य शरीर त्यागकर चंडीपुरमें वास करता है ॥ ३२ ॥

तस्मादूर्ध्वं तु मेषाद्रौ शिवलिंगमनुत्तमम् ॥
तत्रक परमाश्चर्य्यं मध्याह्ने स्त्रीसहायवान् ॥ ३३ ॥

उसके ऊपर मेषाद्रि पर्वतपर बडा उत्तम शिवलिंग है, तहां एक आश्चर्य है कि, दुपहरके समय स्त्रीको साथ लेकर ॥ ३३ ॥

समायाति नरस्त्वेको महाप्रांशुर्महाभुजः ॥
दृष्ट्वा तां चण्डिकां देवीं देवं च परमेश्वरम् ॥३४॥

बडी भुजावाला एक मनुष्य आता है और उन चण्डी तथा परमेश्वर देवको देखकर ॥ ३४ ॥

संपूज्य च पुनर्याति चिह्नं तव प्रकीर्तितम् ॥
ततः पूर्वोत्तरे कोणे गौर्य्याश्रम इतीरितः ॥३५॥

और पूजकरभी फिर चला जाता है यह तुम्हारे प्रति उसका चिह्न कहा; उसके पूर्वोत्तर कोणमें गौरी आश्रम कहा है॥ ३५॥

यत्र पूर्वं महादेवी तपः परममास्थिता ॥
पर्णखण्डाशना भूत्वा बहुवर्षसहस्रकम् ॥३६ ॥

पहिले जहां देवी परम तपमें स्थित हुई थी और हजारों वर्ष पर्यन्त पत्तोंके खण्ड खाये थे ॥ ३६ ॥

तदा चेदं महत्पुण्यं बभूव वरवर्णिनि ॥
पर्णखण्डाशना देवी जाता दैवतपूजिता ॥३७॥

हे वरवर्णिनि ! उस समयसे यह बड़ा पुण्यक्षेत्र हुआ और देवताओंसे पूजित पर्णखण्डाशना देवी विख्यात हुई ॥ ३७ ॥

गंगातीरे च तत्रैव महालिंगं स्वयंभुवम् ॥
तत्रैव शिवकुंडं वै शिवलोकप्रदायकम् ॥ ३८ ॥

वहीं गंगाके किनारे स्वयंभू भगवान् शिवका महालिंग है और वहाँही शिवलोकका देनेवाला शिवकुंड भी स्थित है ॥ ३८ ॥

ततः क्रोशार्द्धके देवि विष्णुकुण्डमिति श्रुतम् ॥
तस्मिन्स्नात्वा हरिं पूज्य वैकुण्ठे निवसेत्सुधीः॥३९॥

हे देवि! उसके आध कोस आगे विष्णुकुण्ड सुना जाता है,

उस कुण्डमें स्नान करके और हरिको पूजकर अच्छी बुद्धिवाला मनुष्य वैकुण्ठमें निवास करता है ॥ ३९ ॥

ततः क्रोशद्वये पुण्यं ज्योतिर्धाम शुभप्रदम् ॥
नृसिंहरूपी भगवान् यत्रास्ते मुक्तिदायकः ॥ ४० ॥

उसके दो कोशपर दोनों लोकका देनेवाला पुण्यदायक ज्योतिर्धाम है । जहां मुक्तिके दाता नृसिंह भगवान् स्थित हैं ॥ ४० ॥

यत्र प्रह्लादयोगीन्द्रो हरिभक्तिपरायणः ॥
एतत्तीर्थसमं नास्ति विष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥ ४१ ॥

जहां योगीन्द्र प्रह्लाद हरिभक्तिमें परायण हैं. अत्यन्त विष्णुकी प्रीति देनेवाले उस तीर्थकी समान कोई तीर्थ नहीं है ॥ ४१ ॥

एतत्पीठसमं नास्ति सिद्धिदं सर्वकामदम् ॥
यदस्मिन् क्रियते कर्म्म तत्सर्वंकोटिसंख्यकम् ४२॥

सर्व कामना और सिद्धिके देनेवाले इस पीठकी समान कोई पीठ नहीं है.इस पीठपर जो कर्म किया जाताहै उसका करोड़-गुना फल होता है ॥ ४२ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ॥
नृसिंहं पूजयेद्भक्त्या यदीच्छेद्विष्णुतां नरः॥४३॥

इस कारण इस स्थानपर किसी प्रकार भी पाप न करे (क्योंकि पापभी करोडगुणा ही होगा) विष्णुपदकी इच्छावाला मनुष्य भक्तिपूर्वक नृसिंहभगवान्का पूजन करै ॥ ४३ ॥

विष्णुप्रयागके स्नात्वा विष्णुलोके महीयते ॥
यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः॥४४॥

विष्णुप्रयागमें स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकमें रहता है जहाँ ब्रह्मादि देवता परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे ॥ ४४ ॥

नानातीर्थानि संत्यत्र सर्वकामप्रदानि च ॥
प्रधानानि दशोक्तानि शृणु तान्यप्यरुन्धति ॥४५॥

सब कामनाको देनेवाले अनेक तीर्थ यहां विराजित हैं । और प्रधान दश कहे हैं सो हे अरुन्धति ! मैं तुम्हारे प्रति कहता हूं ॥ ४५ ॥

यथोक्तानि शिवेनादौ शिवायै सुखदानि च ॥
ब्रह्मकुण्डं तु प्रथमं विष्णुकुण्डमतः परम् ॥ ४६ ॥

जैसे शिवजीने आदिमें पार्वतीसे कहे हैं, सो सुनो पहला ब्रह्मकुण्ड है, इसके पीछे विष्णुकुण्ड है ॥ ४६ ॥

शिवकुण्डं वरारोहे तृतीयं कथितं तव ॥
गणेशं भृङ्गिकुण्डं च ऋषिकुण्डं च षष्ठकम् ॥४७॥

हे सुन्दर श्रोणियोंवाली ! तीसरा शिवकुण्ड कहा है, गणेशकुन्ड, भृंगिकुण्ड है और ऋषिकुण्ड कहा है ॥ ४७ ॥

सप्तमं सूर्यकुण्डं च दुर्गाकुण्डं ततः स्मृतम् ॥
नवमं धनदाकुण्डं प्रह्लादं दशमं स्मृतम् ॥४८ ॥

सातवाँ सूर्यकुण्ड, तिसके पीछे दुर्गाकुण्ड, नववां धनदाकुण्ड और दशवाँ प्रह्लादकुण्ड कहा है ॥ ४८ ॥

कुण्डानां दशके स्नात्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥
स्मृत्वा सर्वाणि पापानि नश्यन्ति मम वल्लभे॥४९॥

इन दशोंकुण्डोंमें स्नान करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाताहै,और

हे मेरीप्यारी! अपने पापोंको स्मरणकरनेसे पाप नष्टहोजातेहैं ४९

विष्णुकुण्डे प्रयागे तु यत्र विष्णुः सनातनः ॥
आराधितो नारदेन प्रत्यक्षमगमत्पुरा ॥ ५० ॥

पहिले जहाँ विष्णुकुण्ड और प्रयागमें नारदजीके आराधन करनेपर सनातन विष्णु प्रत्यक्ष हुए थे ॥ ५० ॥

सर्वज्ञत्वं ददौ तस्मै संतुष्टो भगवान् हरिः ॥
तदानीदं महाभागे विष्णुकुण्डमिति स्मृतम् ॥५१॥

और संतुष्ट हुए भगवान्हरिने उन नारदजीके निमित्त सर्वज्ञता दी। हे महाभागे! उस दिनसे लेकर यह क्षेत्र विष्णुकुण्ड नामसे विख्यात हुआ ॥ ५१ ॥

तत्र स्नात्वा जपं कृत्वा नारायणपरायणः ॥
नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ॥ ५२ ॥

वहां स्नान करके तथा जप करके नारायणमें परायण होकर ओंकारपूर्वक "नमो नारायणाय" इस मंत्रको जपै ॥ ५२ ॥

ततो गच्छेन्महाभागे बदर्य्याश्रममंडले ॥
जयं च विजयं चैव संपूज्य द्वारपालकौ ॥ ५३ ॥

हे महाभागे! तत्पश्चात् बदर्य्याश्रममंडलमें जाय फिर जयविजय नामक द्वारपालोंका पूजन करके ॥ ५३ ॥

गंधमादनबदरीं च पापिनोऽपि व्रजन्ति चेत् ॥
गमनादेव पापानि नश्यन्तीति शिवेरितम् ॥ ५४ ॥

पापी मनुष्य भी यदि गंधमादन बदर्याश्रमकी यात्राकरताहैउसके जानेमात्रसेही संपूर्ण पाप नष्ट हो जातेहैं यह शिवजीने कहाहै५४

इति श्रीकेदारखण्डे बदरीमाहात्म्ये भा०टी० द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अतःपरं परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥
सूक्ष्मक्षेत्रमिति प्रोक्तं सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १ ॥

इसके पीछे देवताओंकेभी दुर्लभ परमस्थान हैं यह सूक्ष्मक्षेत्र कहा है यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ १ ॥

कुण्डानि शृणु कथ्यन्ते प्रयागे विष्णुसंज्ञके ॥
धवलायां तु गंगायां यतःस्नानमभीप्सितम् ॥ २ ॥

विष्णुसंज्ञक प्रयागके कुण्ड कहे जाते हैं सुनो । धवलगंगामें स्नान करना चाहिये यह स्नान अभीप्सित अर्थात् मनके इच्छित पदार्थको देताहै ॥ २ ॥

धारा पापहरा प्रोक्ता गंगाया धूर्जटीरिता ॥
संगमाच्छरविक्षेपे उत्तरे पुलिने प्रिये ॥ ३ ॥

यह गंगाकी धारा पाप हरनेवाली कही है और धूर्जटी नाम कही गई है । इसके संगमसे एक बाण दूर उत्तरके किनारेपर ॥ ३ ॥

ब्रह्मकुण्डमिति प्रोक्तं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ॥
शिवकुण्डं च विख्यातं तस्माद्दण्डषडष्टकम्॥४ ॥

ब्रह्मलोकका देनेवाला ब्रह्मकुण्ड कहा गया है और उससे चौदह दण्ड दूर शिवकुण्ड विख्यात है ॥ ४ ॥

स्नानमात्रेण मनुजः सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥ ५ ॥

वहां भी स्नानमात्रसे सब यज्ञोंका फल होता है अर्थात् यहां स्नान करनेसे मनुष्यने जानों सब यज्ञ कर लिये ॥५॥

तस्माच्छरार्द्धविक्षेपे तीर्थं गाणेशसंज्ञितम् ॥
गणत्वं प्राप्यते यत्र स्नानाद्दानात्तथाशनात् ॥ ६ ॥

उससे आधे बाणकी दूरीपर गणेशसंज्ञक तीर्थ है । जहां स्नान दान तथा भोजन करनेसे मनुष्य गणेश हो जाता है ॥ ६ ॥

धवलायां महाभागे तीर्थान्युक्तानि मत्प्रिये ॥
शृणुष्वालकनन्दायां कुण्डानि प्रवराणि वै ॥७॥

हे प्यारी महाभागे ! तुमसे धवलगंगाके बीचके अनेक तीर्थ कहे. अब अलकनन्दाके बडे कुंड सुनो ॥ ७ ॥

विष्णुकुण्डाच्छरक्षेपे भृङ्गिकुण्डमिति स्मृतम् ॥
स्नानमात्रेण तत्रापि सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ ८ ॥

विष्णुकुण्डसे एक बाणकी दूरीपर भृङ्गकुण्ड कहा है, वहां भी स्नानमात्रसे संपूर्ण पापोंका नाश हो जाता है ॥ ८ ॥

ततः परं परं कुण्डं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥
सूर्यकुण्डमिति ख्यातं सूर्यलोकप्रदायकम् ॥९॥

इसके उपरान्त तीर्थोंमें उत्तमोत्तम परमकुंड है और सूर्यलोकका देनेवाला सूर्यकुण्डके नामसे विख्यात है ॥ ९ ॥

दुर्गाकुण्डं महापुण्यं ततो दण्डचतुष्टये ॥
दुर्गालोकप्रदं चैव सर्वकामफलप्रदम् ॥ १० ॥

और उससे चार दंड दूर महापुण्यदायक दुर्गाकुण्ड है और सब कामनाओंका फल तथा दुर्गालोकका देनेवाला है ॥ १० ॥

धनदा यक्षिणी नाम तस्यास्तीर्थं ततः परम् ॥
धनदा प्रीयते तस्य तत्र यः स्नानमाचरेत् ॥ ११ ॥

तिसके पीछे धनदा यक्षिणीका तीर्थ है जो वहां स्नान करता है उसपर धनदा यक्षिणी प्रसन्न होती है ॥ ११ ॥

प्रह्लादकुण्डं त्वपरं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥
मध्याह्ने तत्र पयसि मीनो वै प्लवते प्रिये ॥ १२ ॥

इसके आगे तत्काल विश्वासका देनेवाला प्रह्लादकुंड है वहां दुपहरके समय उस जलमें एक मछली तैरती है ॥ १२ ॥

दृश्यते पुण्यकृद्भिः सा तत्र ज्ञेयं सुतीर्थकम् ॥
यत्र स्नात्वा च जप्त्वा च कर्म्माण्यन्तं लभेन्नरः॥ १३॥

वह मछली पुण्यात्मा पुरुषोंको दीखती है, यह उस तीर्थकी पहँचान है. वहां स्नान तथा जप करनेसे मनुष्य कर्मबन्धनसे छूट जाता है ॥ १३ ॥

इदं विष्णुप्रयागाख्यं द्वारं विष्णोः प्रकीर्तितम् ॥
प्रायः कलौ मनुष्याणामगम्या बदरी भवेत् ॥ १४ ॥

यह विष्णुप्रयाग विष्णुका द्वार कहा है, प्रायः मनुष्योंको कलियुगमें बदरीवन अगम्य हो जाता है ॥ १४ ॥

यावद्विष्णुर्महीपृष्ठे तावद्गंगा महेश्वरि ॥
तावद्वै बदरी गम्या दुर्गम्या च ततः परम् ॥ १५ ॥

हे महेश्वरि ! जबतक विष्णु और गंगा पृथिवीपर स्थित हैं तबतक तो बदरीवन गम्यहै और इसकेपीछेअगम्य हो जायगा १५

बदरीनाथयात्रां वै करिष्यन्ति बहिः स्थलात् ॥
गंधमादनदक्षे च पार्श्वे मुनिजनप्रिये ॥ १६ ॥

जो बाहरके स्थलसे बदरीनाथकी यात्रा करतेहैं और गंधमादन तथा मुनिजनोंके प्यारे दक्षके निकट यात्रा करते हैं ॥ १६ ॥

पुलिने धवलाया वै बदरी तत्र विश्रुतः ॥
घटोद्भवेन मुनिना पुरा संराधितो हरिः ॥ १७ ॥

धवलगंगाके किनारे बदरीवन विख्यात है, वहां पहिले घटोद्भव अगस्त्य मुनिने भगवान् हरिकी आराधना की थी ॥ १७ ॥

चकार तत्र सान्निध्यं बदरीनाथको हरिः ॥
प्राप्ते कलियुगे घोरे नरः स्वल्पायुषः प्रिये ॥१८॥

तब बदरीनाथहरिने वहां निवास किया; क्योंकि घोर कलियुगके आनेपर मनुष्योंकी थोडी आयु (उमर) होगी ॥ १८ ॥

अल्पसत्त्वा भविष्यन्ति ह्यशक्ता दुर्गमेऽगमे ॥
धाराद्वयं समाख्यातं सद्यः प्रत्ययकारकम् ॥ १९ ॥

थोडे बलवाले होंगे और दुर्गम पहाडादिकोंके गमनमें अशक्त होंगे वहां तत्काल विश्वासकी दिलानेवाली दो धारा कहीहैं १९

उष्णोदकं महापुण्यं वह्निर्यत्रातपत्तपः ॥
स्नात्वा तयोर्महाभागे विष्णोर्लोकं व्रजेन्नरः ॥२० ॥

वहां गरम जल महापुण्यका देनेवाला है, जहां वह्नि (अग्नि) ने तप किया है । हे महाभागे ! उन दोनों धाराओंमें स्नान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको जाता है ॥ २० ॥

महादेवोऽपि तत्रैव मुनीश्वर इतीरितः ॥
तस्य संदर्शनादेव शिवलोकं व्रजेन्नरः ॥ २१ ॥

मुनीश्वरनामसे महादेवजीभी वहीं स्थित हैं, उनके दर्शनमात्रसेही मनुष्य शिवलोकको जाता है ॥ २१ ॥

विष्या बदरी प्रोक्ता महापापौघनाशिनी ॥
ततःपरं महापुण्यं घटोद्भवमुनिस्थलम् ॥ २२ ॥

महापापसमूहको नाश करनेवाली भविष्य बदरी कही गई है, इसके आगे घटोद्भव (अगस्त्य) के नामसे महापुण्यस्थल है २२॥

चतुर्योजनविस्तारं पंचयोजनमायतम् ॥
यत्र ब्रह्मादयो देवा निवसन्ति सुरार्चिताः ॥ २३ ॥

वह चार योजन चौडा और पांच योजन लंबा है, जहाँ देवताओंसे पूजित ब्रह्मादि देवता निवास करते हैं ॥ २३ ॥

शिवस्य बहुलिंगानि स्थापितानि महात्मना ॥
देव्यायतनानि तथा देवानामालयास्तथा ॥ २४ ॥

उन महात्मा अगस्त्यजीने शिवजीके बहुतसे लिङ्ग स्थापित किये हैं। देवीके मंदिर तथा देवताओंके मंदिर भी स्थापित किये हैं ॥ २४ ॥

घंटाकर्णो मुनिस्तत्रसद्यःप्रत्ययकारकः ॥
नानामुनिजनाकीर्णे आश्रमे देवपूजिते ॥ २५ ॥

अनेक मुनिजनोंसे व्याप्त और देवताओंसे पूजित उस आश्रममें तत्काल विश्वासके दिलानेवाले घंटाकर्ण मुनि भी वहां स्थित हैं ॥ २५ ॥

कुर्वन्ति प्राणत्यागं ये न ते वै स्तनपाःपुनः ॥
मनसोद्भेदनगिरेर्निःसृता जाह्नवी परा ॥ २६ ॥

उस स्थानमें जो प्राणत्याग करते हैं वे फिर इस संसारमें माताका दूध पीनेको नहीं आते, मानसोद्भेदके पर्वतसे जाह्नवी गंगा निकली है ॥ २६ ॥

धवलेन पुरा राज्ञा सेविता सर्वकामदा ॥
नाम चक्रे च तस्याः स धवलेति पुनःश्रुतः ॥ २७॥

पहले धवलराजाने उनका सेवन किया, क्योंकि वे सब कामनाओंकी देनेवाली थीं। उस राजाने धवला नामसे उन

गंगाजीका नाम विख्यात किया (धवल नामभी अलकनन्दाका ही है) ॥ २७ ॥

एषा वै नवमी धारा गंगायाः शिवभाषिता ॥
यस्या दर्शनमात्रेण सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥ २८ ॥

यह गंगाकी नववी धारा शिवजीने कही है, जिसके दर्शन मात्रसे मनुष्य तत्काल पापोंसे छूट जाता है ॥ २८ ॥

बदरीमंडले देवि सर्वपर्वतनिर्झरा ॥
महापुण्या समाख्याता विस्तराद्गदितानि वै ॥ २९ ॥

हे देवि! उस बदरीवनमंडलमें सब पर्वतोंसे झरने निकलते हैं और महापुण्या कही है यह मैंने विस्तारसे कहा है ॥ २९ ॥

ये ये वै पर्वतास्तत्र तत्स्वरूपेण देवताः ॥
तपस्यन्ति महात्मानस्तथा मुनिजनाः प्रिये ॥ ३० ॥

हे प्रिये! जो जो वहां पर्वत हैं वे निश्चय उनके स्वरूपसे देवता हैं, वहां मुनिजन और महात्मा पुरुष तप करते हैं ॥ ३० ॥

विष्णुप्रयागतो देवि इशाने बदरी पुरा ॥
यत्र विष्णुः समग्रेण भावेन महता स्थितः ॥ ३१ ॥

हे देवि! विष्णुप्रयागसे ईशान कोणमें पहिले बदरीवन था, जहां विष्णु संपूर्ण भावसे स्थित थे ॥ ३१ ॥

पांडुना च तपस्तप्तं शप्तेन मृगरूपिणा ॥
मुनिना परकोपेन पांडुस्थानं ततः स्मृतम् ॥ ३२ ॥

वहां मृगरूपी मुनिसे शापित हुए पांडुने तप किया, इससे इस स्थानका नाम पाण्डुस्थान है । पाण्डुने भ्रमसे एक मृगके बाण मारा वह मुनि मृगरूप धारणं किये रति करता था उसने

मरते समय शाप दिया कि, तुम अपनी स्त्रीसे रति करतेही मृतक होंगे ॥ ३२ ॥

प्रसन्नो भगवानाह पांडुं परमसुन्दरम् ॥
भो भोः पांडो तव क्षेत्रेधर्मादीनां सुताः किल॥३३॥

परमसुन्दर पांडुसे प्रसन्न हुए भगवान् बोले, हे पांडो ! तुम्हारे क्षेत्रमें निश्चय धर्मादिकोंसे पुत्र होंगे ॥ ३३ ॥

भविष्यन्ति सुतात्मानः सर्वेशास्त्रार्थपारगाः ॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य विष्णोश्च परमात्मनः ॥ ३४ ॥

वे सब आत्मवान् तथा शास्त्रार्थके पारगामी होंगे, इस प्रकार परमात्मा भगवान् विष्णुके वचनको सुनकर ॥ ३४॥

कृतकृत्यं स्वयं मेने दर्शनादेव सुन्दरि ॥
पंधीश्वरो महादेवो भक्तानां प्रीतिवर्द्धनः ॥ ३५ ॥

हे सुन्दरि ! दर्शनमात्रसे वह राजा अपनेको कृतकृत्य मानता हुआ । हे देवि ! भक्तोंकी प्रीतिके बढानेवाले पंधीश्वर महादेव हैं ॥ ३५ ॥

गंगाया दक्षिणे पार्श्वे पर्वते नरनामके ॥
तीर्थानां च सहस्राणि लिंगानां च शतानि वै ॥३६॥

नरनामक पर्वतमें गंगाके दक्षिण ओर हजारों तीर्थ और सैकडों शिवलिंग हैं उसी स्थानपर यह महादेव हैं ॥ ३६ ॥

अगम्यानि कानिचिद्वै तथा गम्यानि च प्रिये ॥
तस्मिन्वै पर्वते नित्यं देवाः सर्वे महर्षिभिः॥३७ ॥

हे प्यारी! कुछ उसमें अगम्य हैं और कुछ तीर्थ गम्य हैं, उस पर्वतपर सदैव सब देवता और महर्षि ॥ ३७ ॥

गायन्ति विष्णुमेकाग्रमनोभिर्वचसां गुणैः ॥
मृदंगध्वनिघोषो वै भेरीशब्दाः सहस्रशः ॥ ३८ ॥

मन और वाणीसे एकाग्र हो विष्णुका गान करते हैं। मृदंग और भेरीके हजारों शब्द होते हैं ॥ ३८ ॥

श्रूयन्ते पुण्यनिलयाः सामगानां तथा स्वनाः ॥
तस्मिन् गिरौ हि वर्तन्ते पुण्यान्यायतनानि च ३९॥

सामवेदके शब्द पुण्यात्मा लोग सुनते हैं, और उस पर्वतपर पुण्यदायक स्थान हैं ॥ ३९ ॥

तप्तोदकानि बहुशः शीततोया जलाशयाः ॥
सर्वे पुण्याः समारंभा विष्णुभक्तिकरास्तथा ॥ ४० ॥

बहुत सारे तप्त जलके सरोवरहैं और बहुतसे शीत जलके सरोवर हैं। सबतीर्थ पुण्यके बढानेवालेहैं तथाविष्णुभक्तिकरानेवालेहैं ४०

उत्तरे पर्वते देवि तथा दिव्या महर्षयः ॥
सिद्धा गुह्यास्तथा नागास्तथैवाप्सरसांगणाः॥४१॥

हे देवि ! उस पर्वतके उत्तरभागमें दिव्य महर्षि; सिद्ध, गुह्य, नाग तथा अप्सराओंके समूह ॥ ४१ ॥

नृत्यन्ति गायमानाश्च विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥
नदीनामुत्तमा तत्र धारा परमपावना ॥ ४२ ॥

नृत्य करते हैं तथा सर्वेश्वर विष्णुका गान करते हैं, नदियोंमें उत्तम परमपवित्र धारा भी वही है ॥ ४२ ॥

गंगाया अष्टमी ज्ञेया नाम्ना बिन्दुमती मता ॥
निःसृता बिन्दुसरसो महापापौघनाशिनी ॥ ४३ ॥

वह धार गंगाकी आठवीं धार जाननी चाहिये,बडे पापस-मूँहको नाश करनेवाली बिन्दुसरोवरसे निकली है इसी कारण उसका नाम 'बिन्दुमती' पडा ॥ ४३ ॥

दर्शनादेव यस्या वै महापापौघनाशनम् ॥
जायते किमु स्नानाद्यैः सत्यंसत्यं न संशयः॥४४॥

जिसके दर्शनसेही महापापसमूहका नाश होता है;स्नान करनेसे नजाने क्याकुछ फल होगा?यहसत्यहै सत्यहै,इसमें संदेहनहीं ४४

ततः क्रोशद्वये देवि वैखानसमुनिस्थलम् ॥
यज्ञभूमिस्तथातत्र तेषां मुनिवरात्मनाम् ॥४५ ॥

हे देवि ! उसके दो कोश उपरान्त वैखानस मुनिका स्थल है मुनिश्रेष्ठोंकी यज्ञभूमिभी वहीं है ॥ ४५ ॥

नदीनां प्रवरा सा वै महापातकनाशिनी ॥
होतृस्थाने मुनीनां तु शृणु प्रत्ययलक्षणम् ॥ ४६ ॥

महापापोंकी नाश करनेवाली नदियोंमें प्रवर है. मुनियोंके यज्ञ करनेका स्थानभी वही है उसके विश्वासका लक्षण सुनो४६

अद्यापि तत्प्रदेशे वै यवा दग्धास्तथा किल ॥
अंगाराश्चापि दृश्यन्ते होतृस्थाने महात्मनाम् ॥४७॥

निश्चय आजपर्यंत उस देशमें जले हुए जौ (यव)निकल-तेहैं महात्माओंकी यज्ञभूमिमें अंगारेभी दीखते हैं ॥ ४७ ॥

तदूर्ध्वं पर्वते रम्ये देवगंधर्वसेविते ॥
योगीश्वर इति ख्याते भैरवोऽतिभयङ्करः ॥४८॥

इसके ऊपर देव और गंधर्वोंसे सेवित उस मनोहर पर्वतपर योगीश्वर नामक अतिभयंकर भैरवजीकी मूर्ति स्थित है ४८॥

तमर्चयित्वा नत्वा च गच्छन्सूक्ष्मतरे स्थले ॥
कुबेरस्य शिलां नत्वा दारिद्र्यं नोपजायते ॥ ४९ ॥

उनका पूजन तथा दंडवत् करके सूक्ष्मतर स्थलमें जाय, वहां कुबेरकी शिलाको दंडवत् करनेसे मनुष्य दरिद्री नहीं होता ४९ ॥

नरनारायणौ श्रेष्ठौ पर्वतौ मुनिवन्दितौ ॥
यो नमेत्परया भक्त्या न स भूयोऽभिजायते॥५०॥

मुनियोंसे वन्दित नरनारायणनामक श्रेष्ठ दो पर्वतोंको जो मनुष्य नमस्कार करता है उसका फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता५०

ये त्यजन्ति शरीराणि नरनारायणाश्रमे ॥
न जायन्ते पुनर्देवि संसारेऽस्मिन् भयावहे॥ ५१ ॥

उस नरनारायणाश्रममें जो मनुष्य शरीर त्यागन करते हैं हे देवि ! वे फिर इस भयावह संसारमें जन्म नहीं लेते ॥ ५१ ॥

स्नात्वा ऋषीणां गंगायां धारायां ये समाहिताः ॥
पानं कुर्वन्ति ते मर्त्या ब्रह्म परमवाप्नुयुः ॥ ५२ ॥

जो एकाग्रचित्तसे ऋषियोंकी गंगामें स्नान करके जल पीतेहैं वे मनुष्य परब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ ५२ ॥

दत्त्वा चाश्रमवासिभ्यो जीर्णानि वसनानि च ॥
गच्छेच्छुद्धे महाक्षेत्रे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ ५३ ॥

वहांके आश्रमवासियोंको जीर्ण वस्त्र देकर महाक्षेत्र शुद्ध श्रीमान् बदरीकाश्रममें जाय ॥ ५३ ॥

आचमेत्कूर्मधारायां जलं परमपावनम् ॥
यदीच्छेत्सुतरां शुद्धिं दर्शने परमात्मनः ॥ ५४ ॥

और परमपवित्र कूर्मधारामें आचमन करे । यदि अत्यन्त शुद्धि और परमात्माके दर्शनकी इच्छा होवे ॥ ५४ ॥

तथापंचशिलां नत्वा परिक्रम्यार्चयेत्सुधीः ॥
धन्यःस एव लोकेषु बदरीशे तथा प्रिये ॥ ५५ ॥

तिसके पीछे पंचशिलाकी परिक्रमा करके पूजन करे । हे प्रिये ! वह मनुष्य लोकोंमें धन्य है । हे प्रिये ! बदरीवनमें ॥ ५५ ॥

त्रुटिमात्रं किल स्वर्णं दद्याद्यो ब्राह्मणाय वै ॥
तस्य पुण्यफलं को वै वक्तुं शक्तःकथं भवेत् ॥ ५६ ॥

थोडासा भी सुवर्ण जो ब्राह्मणके निमित्त देताहै उसके पुण्यका फल कहनेको कैसे कोई समर्थ हो सकता है ॥ ५६ ॥

संपूज्य तत्र केदारं शिवलोके महीयते ॥
परिक्रमेत्तु यो देवं बदरीनायकं परम् ॥ ५७ ॥

वहां केदारनाथका पूजन करके मनुष्य शिवलोकमें महिमाको प्राप्त होताहै और बदरीनायक देवकी जो परिक्रमाकरता है ५७

ससमुद्रवनद्वीपा दत्ता तेन महात्मना ॥
पितरस्तस्य गच्छन्ति तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥ ५८ ॥

उस महात्माने समुद्र और द्वीपोंसहित संपूर्ण पृथ्वीका दान किया, उसके पितर विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

धन्यास्त एव लोकानां यैर्दृष्टो बदरीतरुः ॥
तत्राश्रमे च यैर्वापि स्थितं विष्णुपरायणैः ॥ ५९ ॥

इस संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं जिन्होंने बदरीवनका वृक्ष देखा और विष्णुपरायण होकर जिन्होंने उस आश्रममें स्थिति की ॥ ५९ ॥

नारदीया यत्र शिला विष्णुलोकप्रदायिनी ॥
श्रूयन्ते यत्र निर्घोषा वेदानां सुमुनीरिताः ॥ ६० ॥

जहां विष्णुलोककी देनेवाली नारदीयशिला है, जहां मुनिजनोंके मुखसे निकले हुए वेदोंके शब्द सुनाई आते हैं ॥ ६० ॥

तत्र यत् क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंज्ञितम् ॥
नारदीये ह्रदे स्नात्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥ ६१ ॥

वहां जो कुछ कर्म किया जाता है उसका करोडगुना फल होता है, और नारदीय सरोवरमें स्नान करके मनुष्य फिर माताके दूध पीनेको नहीं आता ॥ ६१ ॥

तत्र चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन ते प्रत्ययो भवेत् ॥
मृत्सा कुंकुमवर्णाभा दृश्यतेऽतीव सुन्दरा ॥ ६२ ॥

वहांका चिह्न कहता हूं जिससे तुम्हें विश्वास हो, वहांकी मिट्टी कुंकुमके वर्णके समान बडी सुन्दर दिखाई देती है ६२॥

तत्र बह्व्यो मूर्तयश्च सन्ति वै श्रीपतेर्विभोः ॥
युगे युगे भविष्यन्ति विष्णोरंशा मुनीश्वराः ॥ ६३ ॥

श्रीपतिकी वहां बहुतसी मूर्तियें हैं, प्रतियुगमें विष्णुके अंशसे मुनीश्वर उत्पन्न होंगे ॥ ६३ ॥

स्थापयिष्यन्ति देवेशं बदरीनाथनामकम् ॥
शिला यत्र च वाराही पापहा सर्वकामदा ॥ ६४ ॥

और बदरीनाथनामक देवेशको स्थापन करेंगे, पापनाशिनी सर्वकामनाओंकी दात्री वाराही शिला जहां स्थितहै ६४॥

वाराहकुंडं चाख्यातं विष्णुपद्यां हि मत्प्रिये ॥
तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च फलानंत्यं लभेन्नरः॥ ६५॥

हे प्यारी! वहां विष्णुपदीमें वाराहकुंड विख्यात है,उस स्थानमें स्नान तथा जप करनेसे मनुष्यको अनंत फलकी प्राप्ति होतीहै६५

नारासिंही शिला तत्र सर्वपापप्रणाशिनी ॥
कुंडं च तत्राख्यातं वै भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ६६ ॥

संपूर्ण पापोंकी नाश करनेवाली नारासिंही शिला भी वहीं है और भुक्ति मुक्तिका देनेवाला कुंडभी वहीं विख्यात है ६६॥

मार्कण्डेयशिला तत्र सर्वलोकेषु दुर्लभा ॥
यां स्पृष्ट्वा पितृणां भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते॥६७॥

संपूर्ण लोकमें दुर्लभ मार्कण्डेयशिलाभी वहीं है, जिसको पितरोंकी भक्तिसे छूकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है॥६७॥

गारुडी च तथा प्रोक्ता गरुडेन महात्मना ॥
प्राप्तं हरेर्वाहनत्वं सख्यं च परमं हरेः ॥ ६८ ॥

महात्मा गरुडजीकी गारुडी शिलाभी वहीं है, जिसके प्रतापसे हरिका वाहनत्व और सख्यता प्राप्त की थी ॥ ६८ ॥

दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तथाभ्यर्च्य नरो नारायणो भवेत् ॥
एतत्पंचशिलामध्ये ह्यासनं बदरीप्रभोः ॥६९ ॥

इसके दर्शन स्पर्श और पूजन कर मनुष्य नारायण हो जाताहै,इन्हीं पंचशिलाओंके बीचमें बदरीनारायण प्रभुका निवासहै ॥ ६९ ॥

वह्नितीर्थसमायुक्तं विष्णुलोकप्रदं शिवे ॥
वह्नितीर्थं यत्र देवि वह्निनाराधितो हरिः ॥ ७० ॥

हे शिवे ! विष्णुलोकका देनेवाला वह्नितीर्थ है । हे देवि ! जहाँ वह्निने हरिकी आराधना की थी ॥ ७० ॥

तस्मै सर्वमवध्यत्वं विश्वात्मा विश्वभावनः ॥
अतःपरतरं नास्ति तीर्थं त्रैलोक्यदुर्ल्लभम् ॥ ७१ ॥

विश्वके आत्मा तथा पालक भगवान्‌ने उसके निमित्त सबसे अवध्यत्व दिया है। त्रिलोकीमें दुर्लभ इससे अधिक और कोई तीर्थ नहीं है ॥ ७१ ॥

अस्मिन् क्षेत्रे तु बहुशस्तीर्थानि प्रवराणि वै ॥
समासेन हि कथ्यन्ते सर्वकामप्रदानि वै ॥ ७२ ॥

इस क्षेत्रमें बहुत सारे बडे तीर्थ हैं, संक्षेपसे कहे जाते हैं, वे संपूर्ण कामनाओंके देनेवाले हैं ॥ ७२ ॥

इति श्रीकेदारखण्डे बदरीमाहात्म्ये भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायप्रारम्भः ४.

ब्रह्मकपाले पितरःप्रेक्षमाणाःस्ववंशजम् ॥
तिष्ठन्ति तस्मात्पिण्डानां प्रदानं मुनयोऽब्रुवन्॥ १॥

ब्रह्मकपालमें अपने वंशजको पितर देखते हैं, इस कारण वहां पिण्डोंका दान मुनियोंने कहा है ॥ १ ॥

अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि भक्त्याऽभक्त्याथ वा पुनः॥
यैरत्र पिंडवपनं कृतं जलसुतर्पणम् ॥ २ ॥

अज्ञान वा ज्ञानसे भक्ति वा अभक्तिसे जिन्होंने यहां पिंडदान वा तर्पण किया ॥ २ ॥

तारिताःपितरस्तेन दुर्गता अपि पापिनः ॥
किं गयागमनादेवि किमन्यत्तीर्थतर्पणैः ॥ ३ ॥

दुर्गतिको प्राप्त और पापी पितरोंको भी उसने तार दिया । हे देवि ! गया जानेसे क्या तथा और तीर्थोंपर तर्पण करनेसे क्या है ॥ ३ ॥

यैर्नरैर्ब्रह्मकापाले पितॄनुद्दिश्य भामिनि ॥
कृतं तत्सर्वमेवासौ कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥ ४ ॥

हे भामिनि ! ब्रह्मकपालमें पितरोंके उद्देशसे जिन मनुष्योंने तर्पण किया उन सबका करोड करोड गुना फल होगा ॥ ४ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्यादत्र सुतर्पणम् ॥
पिंडानां पातनं चैव पितरो मुक्तिमाप्नुयुः ॥ ५ ॥

इस कारण सब प्रयत्नसे यहां तर्पण करना चाहिये और पिंडदान भी करे जिससे पितरोंकी मुक्ति हो ॥ ५ ॥

मातृवंश्याश्च ये केचित् पितृवंश्यास्तथापरे ॥
श्यालाःसंबंधिनो वापि सखायश्चापि भामिनि ॥ ६ ॥

हे भामिनि ! जो माताके वंशके हैं और जो पिताके वंशके हैं तथा जो सुसरालके संबंधी हैं और मित्रभी ॥ ६ ॥

प्रिया वृक्षाःपक्षिणश्च,तिर्यग्योनिगता अपि ॥
गच्छन्ति परमं स्थानं तद्विष्णोःपरमं पदम् ॥ ७ ॥

और जो प्यारे वृक्षकी योनिमें और पक्षी हो गये हैं अथवा तिर्यग्योनिको प्राप्त हुए हैं, वे सब विष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

यानुद्दिश्य च सलिलं पिंडदानं तथैव च ॥
कृतं ते विष्णुलोकाय गच्छन्ति स्मरणादपि ॥ ८ ॥

यहां जिनके उद्देशसे जल और पिंडदान किया वे स्मरण-मात्रसे विष्णुलोकको जाते हैं ॥ ८ ॥

नित्यं जल्पन्ति पितरो मद्वंशे कश्चिदुत्तमः ॥
गमिष्यति विशालायां तारितास्तेन वै वयम्॥९॥

पितर नित्य कहते हैं कि, कोई हमारे वंशमें उत्तम हो जो बदरिकाश्रमको जाय और पिण्डदान तर्पण करके हमको तारे९॥

माहात्म्यं केन शक्येत वक्तुं वर्षशतैरपि ॥
यत्र गंगा महाभागा बदरीनाथशोभिता ॥ १० ॥

सौ वर्षतक भी उसका माहात्म्य कौन कह सकता है ? जहां महाभागा गंगा बदरिकाश्रममें शोभित हैं ॥ १० ॥

नृसिंहश्चापि गंगायां शिलारूपी महामते ॥
तत्र नारायणं कुंडं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ११ ॥

हे महामते ! वहां गंगामें शिलारूपी नृसिंह भगवान् स्थित हैं, वहीं मुक्तिका देनेवाला नारायणकुण्ड भी स्थित है ११॥

इदं परमकं स्थानं श्रीविष्णुः परमेश्वरः ॥
चतुर्युगे न त्यजति सत्यं सत्यं न संशयः ॥१२ ॥

इस परमस्थानको श्रीविष्णु भगवान् चारों युगोंमें नहीं छोडते यह वार्ता सत्य सत्य है इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

पश्चिमे क्रोशखण्डार्द्धे बदरीनाथधामतः ॥
उर्वशीकुंडमाख्यातं सर्वसौंदर्यदायकम् ॥ १३ ॥

बदरीनाथधामसे चौथाई कोस पश्चिमकी ओर सर्व सौंदर्यका देनेवाला उर्वशीकुंड कहा गया है ॥ १३ ॥

पुरा पुरूरवा यत्र रेमे वत्सरपंचकम् ॥
उर्वश्याः सह वामाक्षि जनयामास वै सुतान्॥१४॥

जहां पहले पुरूरवा राजाने पांच वर्षतक रमण किया था हे वामाक्षि ! उर्वशीके साथ पुत्रोंको उत्पन्न करता हुआ १४॥

अत्र यः पंचरात्रं वै स्नाति भक्तिसमन्वितः ॥
कंदर्प इव रूपाढ्यो जायते नात्र संशयः ॥ १५ ॥

यहां भक्तिमें तत्पर होकर पांच रात्रि जो स्नान करता है वह कामदेवकी समान रूपवान् होता है इसमें संदेह नहीं १५॥

तिस्रः कोट्योर्द्धसंयुक्तास्तीर्थान्यत्राश्रमे प्रिये ॥
परं परप्रधानानि रंभोरु शृणु सांप्रतम् ॥ १६ ॥

हे प्रिये ! साढे तीन करोड तीर्थ यहां हैं, सो हे रंभोरु ! इस समय परमप्रधान कहे जाते हैं सुनो ॥ १६ ॥

नानारोगार्त्तदेहोऽपि स्नानादत्र सुखी भवेत् ॥
स्वर्णधाराभिधं तीर्थं देवि गव्यूतिमात्रतः ॥ १७ ॥

अनेक रोगोंसे व्याप्त पुरुषभी यहां स्नान करनेपर सुखी हो-जाता है. और हे देवि ! यहांसे आगे स्वर्णधारा नामक तीर्थ दोकोसपर है ॥ १७ ॥

तत्र स्नात्वा च विधिवद्दिनत्रयमुपोष्य च ॥
कुबेरं पश्यति क्षिप्रमुपासीत हरिं प्रभुम् ॥ १८ ॥

वहां विधिपूर्वक स्नान और तीन दिन व्रत करके जो शीघ्र कुबेरको देखता है और प्रभु हरिकी उपासना करताहै ॥ १८ ॥

सावधानतया तत्र स्थेयं विष्णुपरात्मना ॥
प्रसन्नो धनदो दद्यात्स्पर्शादिवृषदं प्रिये ॥ १९ ॥

सावधान मनसे विष्णुमें मन लगाकर वहां स्थिति करनी चाहिये । हे प्रिये ! कुबेर प्रसन्न होकर उसको निधि देते हैं १९॥

वैखानसं परं तीर्थं महापापनिवारणम् ॥
स्नात्वा फलादिभक्षोऽत्र जयेन्मृत्युं हि वत्सरात् २०॥

आगे महापापका दूर करनेवाला वैखानस परम तीर्थ है वहां एक वर्ष स्नान तथा फलभक्षणकरनेसे मनुष्य मृत्युको जीत लेताहै २०

शेषतीर्थे महापुण्ये गंगायां स्नाति यो नरः ॥
इह लोके वरान् भोगान् परत्र परमां गतिम् ॥२१॥

और शेषतीर्थ महापुण्यप्रद है तथा गंगामें जो मनुष्य स्नान करता है वह इस लोकमें अच्छे भोगोंको भोगकर पर-लोकमें अच्छी गतिको प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

बदरीनाथदेवस्य वामे तीर्थवरं स्मृतम् ॥
इदं धारेति विख्यातं स्नात्वा चेन्दुसमो भवेत् ॥२२॥

बदरीनाथदेवके बाँई ओर श्रेष्ठ तीर्थ है और यह धारा नामसे विख्यात है. वहां स्नान करनेसे मनुष्य चन्द्रमाकी समान हो जाता है ॥ २२ ॥

वेदधारामयं तीर्थं सर्ववेदमयं परम् ॥
ब्रह्महत्यादिशमनं पितॄणां मुक्तिदायकम् ॥ २३ ॥

यह सर्व वेदमय और वेदधारामय तीर्थ ब्रह्महत्यादिको दूर करनेवाला तथा पितरोंको मुक्तिका दाता है ॥ २३ ॥

वसुधाराभिधं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
पापिनां मूर्ध्नि तत्तोयबिन्दवो न पतन्ति हि॥२४॥

संपूर्ण पापोंका नाश करनेवाला वसुधारा नामसे तीर्थ वि-ख्यात है । पापियोंके मस्तकपर उसके जलकी बूँदेंभी नहीं गिरतीं और जिनपर पडती हैं ॥ २४ ॥

चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्जायतेऽत्र वरानने ॥
नाम्ना धर्मशिला तत्र स्नात्वाविश्य महामतिः ॥२५॥

हे वरानने (अच्छे मुखवाली) ! यहां चारों वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) के फलकी प्राप्ति होती है और धर्मशिलानामकी वहां शिला है ॥ २५ ॥

वसुवर्षजपं कुर्याद्वसुलक्षं समाहितः ॥
विष्णुसारूप्यतां याति सत्यमेव न संशयः॥ २६ ॥

यहां आठ वर्षतक आठ लाख जप करे तौ विष्णुके रूपकी प्राप्ति होती है यह सत्य है इसमें संदेह नहीं ॥ २६ ॥

सोमतीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥
वर्द्धते सह सोमेन ह्रसते तत्तथैव च ॥ २७ ॥

संपूर्ण तीर्थोंके फलका देनेवाला सोमतीर्थ विख्यात है । वह चन्द्रमाके साथ बढता है और उसीके साथ कम होता है॥ २७॥

पुरा तत्र महाभागे तप्तं सोमेन वै तपः ॥
प्राप्तवांश्च महद्रूपं सर्वलोकेषु दुर्लभम् ॥ २८ ॥

हे महाभागे ! पहले वहां चन्द्रमाने तप किया था,उसके प्रतापसे सब लोकोंमें दुर्लभ बडे सुन्दर रूपको प्राप्त हुआ ॥ २८॥

स्नानाज्जपात्तथा दानादनंतं फलमश्नुते ॥
परं सत्यं पदं तीर्थं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥२९ ॥

सब लोकोंमें दुर्लभ परम सत्यपद तीर्थ है. वहां स्नान, जप तथा दान करनेसे अनंत फलकी प्राप्ति होती है ॥ २९ ॥

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यादर्जुनः परमास्त्रवित् ॥
भूत्वा ननाश सर्वान्वै शत्रून्दुर्योधनादिकान् ॥३०॥

चक्रतीर्थके माहात्म्यसे अर्जुन परम अस्त्रविद्यामें निपुण होकर सब शत्रु दुर्योधनादिकोंका नाश करता हुआ ॥ ३० ॥

द्वादशादित्यतीर्थं वै सर्वपापप्रणाशनम् ॥
गायते यो बृहत्साम्ना श्रीविष्णुं रविवासरे ॥ ३१ ॥

और एक सब पापोंको दूरकरनेवाला द्वादशादित्यतीर्थ है। रविवारको वहां जो बृहत्सामसे श्रीविष्णुका गान करताहै ३१ ॥

निरोगोऽखिलभोगाढ्यो जायते जनवल्लभः ॥
तथा सप्तर्षितीर्थं वै स्नात्वा ब्रह्ममयो भवेत् ॥ ३२ ॥

वह निरोगी संपूर्ण भोगयुक्त और मनुष्योंका प्यारा होताहै, तथा वहीं सप्तर्षितीर्थ है वहां स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्ममय हो जाता है ॥ ३२ ॥

रुद्रतीर्थे तथा स्नात्वा रुद्रलोके महीयते ॥
ब्रह्मतीर्थं तथा ख्यातं ब्रह्मलोकप्रदायकम् ३३ ॥

तथा रुद्रतीर्थमें स्नान करके रुद्रलोकमें महिमाको प्राप्त होताहै। तथा ब्रह्मलोकका देनेवाला ब्रह्मकुण्डभी वहीं विख्यातहै ३३॥

स्नानं दानं जपो होमस्तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥
नरनारायणं तीर्थं नरनारायणावृषी ॥ ३४ ॥

स्नान, दान, जप, तप तथा होम करनेका करोड गुना फल होता है। आगे नरनारायण तीर्थपर नर नारायण ऋषि हैं ३४॥

तेपाते परमं देवि तपस्त्रैलोक्यतापनम् ॥
तन्नाम्ना तु समाख्यातं तीर्थं परमपुण्यदम् ॥ ३५ ॥

हे देवि! उन्होंने तीनों लोकको तपानेवाला तप किया, तपसे पुण्यका देनेवाला वह तीर्थ उन्हींके नामसे विख्यात हुआ ३५॥

यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥
तत्र यत्क्रियते कर्म तत्सर्वं कोटिसंख्यकम् ॥ ३६ ॥

जहां ब्रह्मादि देवता परम सिद्धिको प्राप्त हुए थे, वहां जो कुछ कर्म किया जाता है उसका करोड गुना फल होताहै ३६ ॥

मुचुकुन्दाश्रमो रम्यो देवदानवपूजितः ॥
कुंडं तत्र समाख्यातं मोचुकुंदेति संज्ञितम् ॥ ३७ ॥

देव तथा दानवोंसे पूजित बडा रम्य मुचुकुंदाश्रम भी वहीं है; वहां मौचुकुंद नामसे कुंड विख्यात है ॥ ३७ ॥

यत्र स्नात्वा सकृदपि न स भूयोऽभिजायते ॥
व्यासतीर्थं समाख्यातं व्यासदेवेन सेवितम् ॥ ३८ ॥

जहां एकबार स्नान करनेसेभी मनुष्य फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। व्यासदेवसे सेवन किया हुआ व्यासतीर्थ भी वहीं विख्यात है ॥ ३८ ॥

अवगाह्य तथा दत्त्वा जप्त्वा ब्रह्म लभेन्नरः ॥
केशवप्रयागतीर्थं क्षेत्राणां परमं मतम् ॥ ३९ ॥

वहां स्नान करके जप तथा कुछदेनेसे मनुष्यको ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। क्षेत्रोंमें परमक्षेत्र केशवप्रयाग तीर्थ भी वहीं है ३९ ॥

मणिभद्राश्रमस्तत्र महाविष्णुश्च तत्र वै ॥
पुरा यत्र वरारोहे भीमसेनोऽजयद्रिपून् ॥ ४० ॥
गंधर्वाख्यान्महाभागे भद्रभद्रपुरःसराम् ॥
तत्र पाण्डवतीर्थं हि पाण्डवा यत्र संस्थिताः ॥ ४१

हे महाभागे! मणिभद्राश्रम भी वहीं है, तथा महाविष्णु भी वहीं हैं और वहीं पांडवतीर्थ है जहां पहिले पांडवोंने स्थिति

की थी । हे वरारोहे ! पहिले जहां भीमसेनने गंधर्वाख्य तथा मद्रभद्रादिक शत्रुओंको जीता था ॥ ४० ॥ ४१ ॥

तपश्चक्रुर्महात्मानो धौम्यलोमशसंयुताः ॥
इति सर्वाणि मुख्यानि तीर्थानि कथितानि वै॥४२ ॥

और वे महात्मा धौम्य और लोमशके साथ तप करते हुए। ये सब मुख्य तीर्थ तुम्हारे प्रति कहे ॥ ४२ ॥

श्रुत्वापि सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ ४३ ॥

मनुष्य इनको सुनकर भी सब पापोंसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमाऽध्यायप्रारंभः ५.

अरुंधत्युवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ ह्युक्तानि बदरीवने ॥
तीर्थानि कथितान्येव स्वर्गादिफलदानि वै ॥ १ ॥

अरुंधती बोली, सर्वधर्मज्ञ हे भगवन् ! स्वर्गादिके फलदाता बदरीवनके तीर्थ आपने मुझसे वर्णन किये ॥ १ ॥

अतःपरं महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥
केन केनात्र चरितं तीर्थयात्राव्रतं मुने ॥ २ ॥

हे महाभाग ! अब इससे आगे मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि, किस किसने यहां तीर्थयात्रा और व्रत आचरण किया है२॥

किं किं फलं परं प्राप्तं माहात्म्यं कस्य कर्मणा ॥
एतत्सर्वं समाख्यानं मम विस्तरतो वद ॥ ३ ॥

किस कर्मसे क्या क्या फल और माहात्म्य प्राप्त हुवा है, यह सब आख्यान मुझसे विस्तारपूर्वक कहो ॥ ३ ॥

क्षेत्रं परममाख्यातं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥
शृण्वन्त्यास्तस्य माहात्म्यं तृप्तिर्मे जायते न हि॥४॥

चतुर्वर्गके फलका देनेवाला यह क्षेत्रका आख्यान है, इसके माहात्म्यको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ ४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

साधु पृष्टं त्वया देवि तत्ते सर्वं वदाम्यहम् ॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥

वसिष्ठजी बोले, हे देवि ! तुमने अच्छा प्रश्न किया, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ५ ॥

परमं गीतमाहात्म्यं बदरीनाथवेश्मनि ॥
दृष्टं पुरा मया देवि नारदेन यथा पुरा ॥ ६ ॥

हे देवि ! बदरीनारायणमें मैंने गानका परममाहात्म्य देखा है, जिस प्रकार पहले नारदजीने ॥ ६ ॥

आराधितो महादेवो भूतभावनभावनः ॥
गीतेनाष्टकवर्येण संतुष्टो भगवान् ददौ ॥ ७ ॥

भूतभावन भगवान् शंकरकी आराधना की और उनके अष्टकसे प्रसन्न होकर भगवान्ने जैसे ॥ ७ ॥

सर्वज्ञत्वं च देवत्वं नारदाय महात्मने ॥
तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सर्वपापहरं शुभम् ॥ ८ ॥

सर्वज्ञत्व तथा देवत्व उन महात्मा नारदजीके निमित्त दिया। इस समय सब पापोंका हरनेवाला वह शुभाख्यान कहताहूं ॥८॥

शृणु सर्वं पुरा वृत्तं नारदस्य महात्मनः ॥
दृषद्वत्यां बभूवाथ नाम्ना विष्णुमना द्विजः ॥९॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धर्मात्मा धर्मतत्परः ॥
तस्य पुत्रो विष्णुरतिर्बभूव वरवर्णिनि ॥ १० ॥

हे देवि ! नारद महात्माका पहिला आख्यान सुनो। दृषद्वती नदीके किनारे सब शास्त्रार्थके तत्त्वका जाननेवाला धर्ममें तत्पर धर्मात्मा एक विष्णुमना नामका ब्राह्मण था। सो हे वरवर्णिनि ! विष्णुरति नामक उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥९॥१०॥

पाठ्यमानोऽपि बहुधा पुत्रो विष्णुमना बहु ॥
न पपाठ महाभागे विद्यां शास्त्रात्मिकां सदा॥११॥

हे महाभागे ! उसके पिताने अनेकबार पढाया किन्तु उसने शास्त्रीय विद्याको कदापि नहीं पढा ॥ ११ ॥

गाने तस्य मनो लग्नं गायनज्ञैश्च संगतः ॥
ययौ देशान्तरे देवि भिक्षितुं नृपतींस्तथा ॥ १२ ॥

और गानविद्यामें उसका मन लगगया। हे देवि! वह गानेवालोंके साथ देशान्तरोंमें राजाओंसे मांगनेको चल दिया॥ १२॥

बहुधा वार्यमाणोऽपि मन्यते न कदाचन ॥
पुत्रं निष्कासयामास क्रोधाविष्टो महीसुतः ॥ १३ ॥

बारबार अपने पिताके समझानेपर उसने कदापि न माना तौ क्रोधमें आकर उस ब्राह्मणने उसे घरसे निकाल दिया ॥ १३॥

सोऽपि विष्णुरतिर्मूर्खो गायनज्ञैश्च संगतः ॥
नारायणं दयासिन्धुं गायनैश्च वरानने ॥ १४॥

तब वह मूर्ख विष्णुरति भी गवैयोंके साथ चल दिया और हे वरानने ! उनके संग दयासिंधु नारायणका गान करता हुआ ॥ १४ ॥

प्रसंगात्तस्य वामाङ्गि विष्णुभक्तिः प्रजायते ॥
शब्दो ब्रह्म यतो ह्युक्तं गीताख्यं परमं पदम् ॥ १५॥

सो हे वामांगि ! प्रसंगसे उसको विष्णुभक्ति उत्पन्न होगई कारण कि, गीताख्य जो शब्द है यही परमपद ब्रह्म कहा जाता है ॥ १५ ॥

तस्य घोषात् कुतो देवि न भवेद्ब्रह्मतत्परः ॥
गायते यो विना विष्णुं शिवं च परमेश्वरम् ॥१६॥

हे देवि ! उसके शब्दसे कौन ब्रह्ममें तत्पर नहीं होता और जो मनुष्य परमेश्वर शिव तथा विष्णुके बिना गान करताहै १६ ॥

पापात्मा स हि विज्ञेयो गीतशास्त्रविशारदः ॥
तस्माद्गायेत्परब्रह्म यतोऽवाप्य न शोचति ॥ १७ ॥

वही पापात्मा जानना चाहिये चाहे गीतशास्त्रमें चतुर क्यों न हो. इस कारण परब्रह्मका गान करना चाहिये, जिसको प्राप्त होकर शोचसे छूट जाता है ॥ १७ ॥

गीत्वा यद्वै परं ब्रह्म शिवोऽभूद्ब्रह्मतत्परः ॥
गानमेव परं मन्ये यतो विष्णुः प्रसीदति ॥ १८ ॥

ब्रह्ममें तत्पर होकर परब्रह्मका गान करके वह शिव हुआ और गानको ही अधिक मानता हुआ. कारण कि, जिससे विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥ १८ ॥

ब्रह्मप्रीतिकरो यस्माच्छीघ्रं नान्योविधिःप्रिये ॥
असौ विष्णुरतिर्मूर्खो विष्णुभक्तोऽभवद्यथा ॥१९॥
हे प्रिये! ब्रह्ममें प्रीति करनेवाला इससे अधिक उपाय नहीं है जिस कारणसे यह मूर्ख विष्णुरति विष्णुका भक्त हुआ १९॥

सोऽपि विष्णुरतिः संगं गायकानामिह त्यजन् ॥
एकाकी प्रययौ धीमान् कैलासे पर्वतोत्तमे ॥ २०॥
वह विष्णुरति भी गान करनेवालोंका साथ छोडकर अकेला पर्वतोंमें उत्तम कैलासपर्वतपर गया ॥ २० ॥

बदरीवनमध्ये तु नारायणसमीपतः ॥
गीयते स्म तदा विष्णुर्भगवान्वै महात्मना ॥२१॥
नारायणके समीप बदरीवनके बीचमें उस महात्माके गान करनेपर श्रीविष्णुभगवान्ने ॥ २१ ॥

तदा तुष्टो वरं प्रादाच्छ्रीविष्णुरतये प्रिये ॥
दुर्लभं योगिनां यद्वै नारदत्वं च संगतः ॥ २२ ॥
संतुष्ट होकर विष्णुरतिके निमित्त प्रसंगसे योगियोंकोभी दुर्लभ नारदत्व दिया ॥ २२ ॥

अरुन्धत्युवाच ।

कथं गीतो महाविष्णुः केन गीतेन वै प्रभो ॥
तन्मे शंस महापुण्यं नारदत्वं कथं गतः ॥ २३ ॥
अरुंधती बोली, हे प्रभो ! किस गीतसे किसप्रकार गानेपर श्रीविष्णुभगवान् प्रसन्न हुए और वह किसप्रकार नारदपनेको प्राप्त हुए वह मेरे प्रति कहो ॥ २३ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु चित्तं समाधाय विष्णुभक्तिकरं परम् ॥
यद्गीत्वा च पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २४ ॥

वसिष्ठजी बोले, विष्णुमें भक्ति करनेवाले गानको एकाग्रचित्तसे सुनो, जिसको गान तथा पढकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै २४

नामामृतं परं दिव्यं श्रीविष्णोः परमात्मनः ॥
सिद्धिदं यत्र कुत्रापि किमु तद्बदरीवने ॥ २५ ॥

श्रीविष्णु परमात्माका नामरूपी अमृत परमदिव्य है, जहाँ कहीं भी सेवन करो सिद्धिका देनेवाला है, बदरीवनमें हीक्या? २५॥

गंगायां स महाभागः स्नात्वा गृह्य जलं परम् ॥
संगायति महाविष्णुं नित्यमेव तपोनिधिः ॥ २६ ॥

वह महाभाग तपोनिधि गंगामें स्नान तथा जल ग्रहण करनेसे सदा विष्णुके साथ रहते हैं ॥ २६ ॥

विष्णुरतिरुवाच ।

रमारमण बदरीपते हरे नृहरे श्रीपरमेश ॥
भवाब्धितरणचरणेश विभो परमविचरेश ॥
मामव मामव दुरिताब्धौ निमज्जन्तम् ॥ १ ॥
धरणीधरण शुभकरण नारायण सुखनिकेतन ॥
जलधरतनोसुमनोभ्यर्चितचरण तरणेऽव नः ॥ मा० २
मधुमथन सुरधरण शुभसदपरानिधान ॥
गरुडपरासन भासन सुरनरकरणविधान ॥ मामव० ३
जीवजीवनबदरीवनसदन गोपीजनसानन्द ॥
नरकनिवारण दनुजविदारणकरपरमानन्द ॥ मा० ४॥

राम रावणमथन सीतानन्दकर सुरनाथ ॥
दुरितनिकृंतन जलधिमंथन शुभगात ॥ मामव० ५॥
जय जय हरिततनो भगवन् यदुवंशहारिनाम ॥
असुरसूदन बलपते बलिछलन धृतबलिधाम॥मा०६॥

हे लक्ष्मीके रमणकरनेवाले हे बदरीपते हे नृसिंह हे परमेश्वर! आप संसारसागरके तारनेवाले हो, तुम विभु हो, सर्वत्र विराजमान हो, परन्तु मैं पापरूपी सागरमें डूबता हूं मेरी रक्षा करो रक्षा करो ॥ १ ॥ हे नारायण ! तुम पृथ्वीके धारण करनेवाले, शुभकरनेवाले, देवताओंके आश्रयभूत हो, मेघकी समान श्याम शरीर, सत्पुरुषोंसे पूजित हो, तुम्हारे चरण हमको तारनेवाले हैं, मेरी रक्षा करो ॥ २ ॥ हे मधुसूदन! देवताओंके रक्षक, अच्छे स्थानयुक्त, परम पुरुष, हे गरुडके आसनपर विराजनेवाले; प्रकाशमान देवता मनुष्योंके मंगल करनेवाले! मेरी रक्षा करो ॥ ३ ॥ हे जीवोंके जीवन ! बद्रिकाश्रममें निवास करनेवाले गोपीजनोंके आनन्द करनेवाले ! नरकभय दूर करनेवाले ! दैत्योंके नाशक, परमानन्द करनेवाले !मेरी रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे सीतापति ! तुम रावणके मारनेवाले हो. हे राम ! तुम सीताको आनन्द करते हो, देवताओंके स्वामी, पापनाशक, सागरमथनकर्ता, शुभकथावाले हो ॥ ५॥ हे हरिततनु भगवन् ! तुम्हारी जय हो. यदुवंश हारि तुम्हारा नाम है, तुम असुरनाशक बलपति बलीके छलनेवाले बली बलिका धाम धारण करनेवाले हो मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥

भक्त्या परमया गीतं हर्षेण महता प्रिये ॥
प्रत्यक्षं दृष्टवान् विप्रो महाविष्णुं परात्परम् ॥२७॥

हे प्रिये ! परम भक्ति और प्रसन्नतासे गान करनेपर वह ब्राह्मण परेसे परे विष्णुका प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ ॥ २७ ॥

शंखचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो द्योतयन् सर्वतो दिशः॥ २८ ॥

शंख चक्र गदा पद्म और वनमालासे विराजित करोड सूर्यकी समान प्रकाशवाले सब दिशाओंको प्रकाश करते हुए२८

उवाच परमं तुष्टो द्विजभक्तिकरं परम् ॥
वरं वरय भद्रं ते न हि ते दुर्ल्लभं क्वचित् ॥ २९ ॥

अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् द्विजभक्तिमें तत्पर ब्राह्मणसे बोले, वर माँगं तुझको इस संसारमें कुछ दुर्लभ नहीं ॥ २९ ॥

विष्णुरतिरुवाच ।

धन्योऽस्म्यहं जगन्नाथ परमात्मन् सनातन ॥
न दृष्टं यत्पुरा कैश्चित्तत्ते रूपं गतं मया ॥ ३० ॥

विष्णुरति बोला हे परमात्मन् सनातन जगन्नाथ ! मैं धन्य हूं कारण कि, जो रूप पहिले किसीने नहीं देखा सो मैंने देखा ३०

भक्तिर्यथा भवेन्नित्यं त्वयि विष्णौ परेश्वरे ॥
तथाऽस्माद्भगवन् देव गानेन कुशलो भवेः ॥ ३१ ॥

तुम परमेश्वर विष्णुमें मेरी भक्ति हो और हे भगवन् ! गानविद्यामें मैं चतुर होऊं ऐसा विधान कीजिये ॥ ३१ ॥

यत्र कुत्रापि त्वद्भक्तिर्भवतु मम माधव ॥
न पश्यामि भवं विष्णो वराणां मे चतुष्टयम्॥३२॥

हे माधव! जहां कहीं भी मैं उत्पन्न होऊं परन्तु मेरी भक्ति आपमें अवश्य हो और चौथा वर यह दो कि, हे विष्णो संसारका दुःख न देखूं ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

याचितं यत्त्वया विप्र सर्वं तत्ते भविष्यति ॥
शिवमाराध्य रागज्ञो भविष्यसि महामुने ॥ ३३ ॥

श्रीभगवान् बोले, जो तुमने मांगा सो सब होगा और हे महामुने! शिवकी आराधना करके तुम राग (गीत) के जाननेवाले होगे ॥ ३३ ॥

पुरा त्वं नारदो नाम्ना मम भक्तो मम प्रियः ॥
दक्षशापेन संसारं प्राप्तोऽसि मुनिवन्दितः ॥ ३४ ॥

पहले तुम नारदनामसे मेरे भक्त और मेरे प्यारे थे, दक्षके शापसे मुनियोंसे वन्दित हुए तुम इस संसारमें आये ॥ ३४ ॥

नारद तत्त्वतो गानं मह्यं तन्मम रूपकम् ॥
अथापि नारदो नाम्ना भविष्यसि तपोनिधे ॥ ३५ ॥

तुमने ज्ञानरूपसे गान किया है इससे हे तपोनिधे! तुम नारद नामसे विख्यात होगे ॥ ३५ ॥

इदं नारदकुण्डं हि सर्वमुक्तिप्रदायकम् ॥
भविष्यति महाभाग ममापि स्थितिरुत्तमा ॥३६॥

सब मुक्तियोंका देनेवाला हे महाभाग! यह नारदकुंड विख्यात होगा और मेरी स्थिति भी यहीं रहेगी ॥ ३६ ॥

मूर्तयश्चापि पंचाशद्वर्तन्ते तावके ह्रदे ॥
युगे युगे ममांशश्च हरांशश्चैव शंकरः ॥ ३७ ॥

उस सरोवरमें पचास मूर्तियें भी स्थित हैं, युग युगमें मेरे और शिवजीके अंशवाली ॥ ३७ ॥

उद्धरिष्यति मे मूर्तितीवकीनह्रदाच्छुभात् ॥
अस्मिन्कुण्डे तु यः कश्चित्स्नानं दानं जपादिकम् ३८

उस मनोहर कुंडसे मेरी मूर्तियें निकलती हैं, इस कुंडमें जो कोई स्नान दान तथा जप आदि ॥ ३८ ॥

करिष्यति महाभाग फलानंत्यं समश्नुते ॥
निराहारेण यः कश्चित्प्राणांस्त्यजति बुद्धिमान्॥३९

करता है हे महाभाग! उसको अनन्त फलकी प्राप्ति होती है और जो बुद्धिमान् निराहार करके प्राण त्यागन करताहै ३९

किं तस्य काशीमरणं किं वा योगशतैस्तथा ॥
धन्यः स एव लोकेषु पुण्यात्मा नात्र संशयः ॥४०॥

उसको काशीमें मरनेसे क्या ओर सैकडों योगोंसे क्या ? अर्थात् उसका फल यहां ही प्राप्त हो जाता है. संसारमें वही धन्य है वही पुण्यात्मा है इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥

वसिष्ठ उवाच ।

इत्याभाष्य मुनिं विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
सोऽपि विप्रो महाभागे नारदत्वमुपागतः ॥ ४१ ॥

वसिष्ठजी बोले, इस प्रकार विष्णु भगवान् उस मुनिसे कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। हे महाभागे ! वह ब्राह्मण भी नारदपनेको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥

शिवमाराध्य विश्वेशं सर्वं संगीतमाप्तवान् ॥
मूर्तिमन्तस्तथा रागा भेजिरे नारदं मुनिम् ॥४२॥

फिर शिवजीकी आराधना करके संगीतशास्त्रमें चतुर हुआ और मूर्तिमान् हुए वे राग उसकी सेवा करने लगे ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां नारदोपाख्यानं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठाऽध्यायप्रारम्भः ६.

वसिष्ठ उवाच ।

अरुंधति प्रवक्ष्यामि यात्रा या बदरीपतेः ॥
फलमाश्चर्यरूपं वै सावधानाऽवधारय ॥ १ ॥

हे अरुंधति ! मैं बदरीनारायणकी यात्राका आश्चर्यरूप फल कहताहूं, सावधान होकर धारण करो ॥ १ ॥

इतिहासं महापुण्यं धनमायुष्यवर्द्धनम् ॥
कथयामि महावैश्यो ब्रह्महत्यायितोऽपि सः ॥ २ ॥

धन और आयु (उमर) का बढानेवाला बडा पवित्र इतिहास कहता हूं, कि ब्रह्महत्यारा एक वैश्यभी ॥ २ ॥

निष्पापः प्राप भवनं वैकुठाख्यं महास्पदम् ॥
प्रतिष्ठाने पुरे वैश्यो बभूव धनतोयधिः ॥ ३ ॥

निष्पाप होकर वैकुंठ नामक सुन्दर भवनमें गया प्रतिष्ठानपुरमें बडा धनवान् एक वैश्य रहता था ॥ ३ ॥

नाम्ना शंकरगुप्तो वै धर्मात्मा विष्णुतत्परः ॥
हरिभक्तिपरान् विप्रान् दृष्ट्वा पप्रच्छ चादरात् ॥
कदा मे पुत्रसंप्राप्तिर्भविता वै तपोधनाः ॥ ४ ॥

विष्णुभक्तिमें तत्पर शंकरगुप्त उसका नाम था। एक समय वह हरिभक्तिमें तत्पर ब्राह्मणोंसे आदरपूर्वक पूंछने लगा, हे ब्राह्मणो ! कहो मेरे पुत्र कब होगा ? तब ब्राह्मण बोले ॥ ४ ॥

परं दारुणवेलायां पृष्टाःस्मो भवता वयम् ॥
तेन ते परमं पापं करिष्यति सुतःकिल ॥ ५ ॥

हे वैश्य ! परमदारुण समयमें तुमने प्रश्न किया है इस कारण तुम्हारे पुत्र तौ होगा किन्तु पापी होगा ॥ ५ ॥

पुनर्वै बदरीशस्य यात्रया भविताऽमलः ॥
इत्युक्त्वा ते महाभागे चक्रुरिष्टिं महाविधिम् ॥ ६ ॥

फिर बदरीनारायणकी यात्रा करके निर्मल हो जायगा । हे महाभागे ! वे इस प्रकार कहकर यज्ञकी विधि आरम्भ करने लगे ॥ ६ ॥

चरुमुत्पाद्य तत्रापि ददुस्तस्मै महात्मने ॥
सोऽपि वैश्यो महाभागे ददौ बहुतरं धनम् ॥ ७ ॥

और चरु उत्पन्न करके उस महात्मा वैश्यको दी, उस समय उस महाभाग वैश्यने उनके निमित्त अनेक प्रकारके धन दिये ॥ ७ ॥

तृप्तास्तेऽपि ययुर्विप्राःस्वं स्वं देशं मुदान्विताः ॥
शंकरोऽपि चरुं लब्ध्वा प्रतिष्ठाने पुरे शुभे ॥ ८ ॥

तब वे ब्राह्मणभी तृप्त होकर तथा प्रसन्न होकर अपने २

देशोंको गये और वह शंकरगुप्त भी चरुको लेकर मनोहर प्रतिष्ठान पुरमें ॥ ८ ॥

प्रियायै प्रददौ तूर्णं गर्भं प्राप वराङ्गना ॥
ततस्तु दशमे मासि प्रासूत वरपुत्रकम् ॥ ९ ॥

अपनी स्त्रीको दिया, उस दिनसे उसकी स्त्री गर्भिणी हुई और उससे दश महीने बाद उसके पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ९ ॥

उवाच पतिना तं वै ब्रह्मदत्तेति नामतः ॥
ब्राह्मणैश्च यतो दत्तोऽसौ ततो ब्रह्मदत्तकः ॥ १० ॥

ब्राह्मणोंने उस बालकको दिया था इस कारण उस स्त्रीके स्वामीने बालकका नाम 'ब्रह्मदत्त' रक्खा ॥ १० ॥

ववर्द्ध सोऽपि वैश्यस्य पुत्रः शौक्लो यथा शशिः ॥
वयोयौवनमापन्नो वैश्यपुत्रो महाद्युतिः ॥ ११ ॥

वह वैश्यपुत्र शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी समान बढने लगा फिर वह महाकान्तिवाला ब्रह्मदत्त यौवनावस्थाको प्राप्त होकर ११ ॥

एकदा प्रययौ सोऽपि विक्रीतं द्रव्यकं बहु ॥
गच्छमानो ददर्शाग्रे म्लेच्छवृन्दं वरानने ॥ १२ ॥

एक समय वह वैश्यपुत्र बहुतसारे धन बेचनेको चला मार्गमें जाते हुए म्लेच्छोंके समूह देखे ॥ १२ ॥

तत्र म्लेच्छीं ददर्शासौ रूपयौवनशालिनीम् ॥
वराननां सुकेशीं च नेत्राभ्यां जितखंजनाम् ॥ १३ ॥

वहां अच्छे मुख तथा अच्छे बालोंवाली नेत्रोंसे ममोलेको लजानेवाली तथा यौवनशालिनी म्लेच्छकी स्त्रीको देखा ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा मुमोह तां वेश्यां ब्रह्मदत्तो विशः सुतः ॥
धनं तस्यै ददौ सर्वं तत्संगे निरतोऽभवत् ॥ १४ ॥

वह ब्रह्मदत्त वैश्यका पुत्र उसको देखकर मोहित होगया और जितना धन था सब उसको दे दिया तथा उसके साथ रमण करने लगा ॥ १४ ॥

तद्धर्मनिरतश्चापि बभूव वरवर्णिनि ॥
धनं सर्वं क्षयं नीतं दस्युधर्मरतोऽभवत् ॥ १५ ॥

हे वरवर्णिनि ! उसीके धर्मपर आरूढ हो गया । कुछ दिनोंमें सब धन नाश होगया तौ जुवा खेलने लगा ॥ १५ ॥

तां गृहीत्वा वने वेश्यामुवास जनवर्जिते ॥
एकदा ब्रह्मदत्तोऽसौ गतश्चौर्याय कानने ॥ १६ ॥

फिर निर्जन वनमें उस वेश्याको लेकर रहने लगा । एक समय वह ब्रह्मदत्त वनमें चोरी करने गया ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विप्राञ्जातरूपपरिच्छदान् ॥
आयातान्दृष्टवाँस्तूर्णं धनुः सज्जं चकार ह ॥ १७ ॥

उसी समयमें जातरूपपरिच्छद (सोनेके गहने पहिरे) ब्राह्मणोंको आते हुए देखकर ॥ १७ ॥

बाणं संधाय धनुषि ब्राह्मणान्निजघान ह ॥
यत्किंचिद्वसु विप्रेभ्यो मृतेभ्यो मम वल्लभे ॥ १८ ॥

बाणको धनुषपर चढाकर ब्राह्मणोंको मारा, और हे प्यारी! जो कुछ उन मरे हुए ब्राह्मणोंपर धन था उनसे ॥ १८ ॥

जग्राह च पुनर्दृष्ट्वा विकीर्णान् सुजटान् बहु ॥
यज्ञोपवीतिनश्चापि मृतान्दृष्ट्वातिदुःखितः ॥ १९ ॥

सब ले लिया, फिर फैली हुई जटावाले तथा यज्ञोपवीत-धारी मरे हुओंको देखकर अत्यन्त दुःखी हुआ ॥ १९ ॥

विप्राणां दर्शनादेव किंचित्पापं क्षयं गतम् ॥
चिन्तयामास बहुशो ब्रह्महत्याभिपीडितः ॥ २० ॥

और बारबार विचारने लगा कि, ब्राह्मणोंके दर्शनसे उसके पाप नष्ट हुएथे, इस कारण ब्राह्मणोंको मारनेसे पीडित हुआ २०

किं मया दुष्कृतं कार्यं कृतं पापेन कर्मणा ॥
धनलुब्धेन सुतरां क्व गच्छामि क्व मे गतिः॥ २१ ॥

किस कर्मसे मैंने धनके लोभसे बडा दुष्कृत कार्य किया, मैं कहां जाऊं और मेरी क्या गति होगी ॥ २१ ॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन जातोऽस्मि पितृप्रार्थितः ॥
अत्यन्तं चिंतयानोऽसौ ययौ यत्र पिता स्थितः२२॥

पिताके प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणोंके प्रसादसे मैं उत्पन्न हुआथा अब क्या करूं यह विचारता हुआ पिताके निकट चलागया२२

पादयोः पतितस्तस्य शंकरस्यातिदुःखितः॥
मयातिदुष्कृतं तात नीतं सर्वं धनं क्षयम् ॥ २३ ॥

और अत्यन्त दुःखी होकर शंकरनामक पिताके चरणोंमें गिरपडा और बोला कि, हे पितः ! मैंने बडा खोटा कर्म किया मेरा धनभी सब नष्ट होगया ॥ २३ ॥

चाण्डाल्या सह संभोगी ब्रह्महत्यासमन्वितः ॥
गतिः कथं मे भविता पितर्मे वद सांप्रतम् ॥ २४ ॥

मैं ब्रह्महत्यारा तथा चाण्डालीके साथ संभोग करनेवाला हूं हे पितः ! क्या मेरी गति होगी ? सो इस समय कहो ॥ २४ ॥

पापोऽहं पापकर्माहं मज्जमानो भवार्णवे ॥ २५ ॥

मैं पापी हूं पापकर्म करनेवाला हूँ और संसाररूपी समुद्रमें डूबता हूं ॥ २५ ॥

शंकरगुप्त उवाच ।

एवमेव पुरा तात ब्राह्मणैः समुदीरितम् ॥
अन्यथा तद्वचः पुत्र भवेदत्र कथं खलु ॥ २६ ॥

हे पुत्र ! ब्राह्मणोंने पहिलेही कहदिया था कि, ऐसा ही होगा। हे तात ! उनका वचन कैसे झूठा हो सकताहै ? ॥ २६ ॥

भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा ॥
जनमेजयो यथा राजा धर्मात्मा सत्यसंगरः ॥२७॥

होनहार वार्ता होती ही है इसमें विचार नहीं करना चाहिये। जैसे धर्मात्मा सत्यसङ्गर जनमेजयने ॥ २७ ॥

अष्टादशब्राह्मणानां हत्यां प्राप वने सुत ॥
तथा त्वमपि हत्यां वै प्राप्तवान्दैवनिर्मिताम् ॥२८॥

अठारह ब्राह्मणोंको मारकर हे पुत्र ! ब्रह्महत्या की इसी प्रकार दैवनिर्मित हत्या तुझको भी प्राप्त हुई है ॥ २८ ॥

पुत्र उवाच ।

किं कर्तव्यं मयेदानीं कथं वै निष्कृतिर्भवेत् ॥
मज्जमानं हि पापाब्धौ रक्ष तात कृपान्वितः॥२९॥

पुत्र बोला, इस समय मुझको क्या करना चाहिये और किस प्रकार पापोंसे छुटकारा हो, पापके समुद्रमें डूब रहा हूं। हे पितः ! मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥

पितोवाच ।

तैरेव गदितं पुत्र ब्राह्मणैर्यन्महात्मभिः ॥
तत्ते संप्रति वक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ॥ ३० ॥

पिता बोले, हे पुत्र ! उन महात्मा ब्राह्मणोंने जो कुछ कहा है वह मैं तुझसे कहता हूं सावधान होकर धारण करो ॥ ३० ॥

कैलासे पर्वतश्रेष्ठे गंधमादनपर्वते ॥
बदरीवनमध्ये वै बदरीनायको हरिः ॥ ३१ ॥

पर्वतोंमें उत्तम गंधमादन और कैलासपर्वतपर बदरीवनके बीचमें बदरीनायक हरि हैं ॥ ३१ ॥

दृष्ट्वा यं ब्रह्महत्याभिर्मुच्यते नात्र संशयः ॥
पुत्र त्वमपि गच्छस्व बदरीनाथदर्शने ॥ ३२ ॥

जिनका दर्शन करके मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है इसमें संदेह नहीं। हे पुत्र! तुम भी बदरीनाथके दर्शन करनेजाओ ३२

वसिष्ठ उवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शंकरस्य महात्मनः ॥
ययौ गणेशं संपूज्य नमस्कृत्य च ब्राह्मणान् ॥ ३३ ॥

वसिष्ठजी बोले, इस प्रकार अपने पिता शंकरगुप्त महात्माके वचनको सुनकर ब्रह्मदत्त गणेशजीका पूजन तथा ब्राह्मणोंको नमस्कार करके चलदिया ॥ ३३ ॥

गंगाद्वारे समागत्य नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥
भैरवं चापि संपूज्य फलरक्षणहेतवे ॥ ३४ ॥

गंगाजीके निकट आया और महेश्वर शिवको नमस्कार करके तथा फलरक्षाके निमित्त भैरवजीको पूजकर ॥ ३४ ॥

केदारेशं च संपूज्य स्नात्वा तत्र यथाविधि ॥
बदरीनाथभवनं नरनारायणस्थले ॥ ३५ ॥

और केदारेशकाभी पूजन करके तथा यथाविधि वहां स्नान करके, नरनारायणस्थलमें बदरीनाथके भवनको प्राप्त हुआ ३५

तत्रत्येषु च तीर्थेषु स्नातः सर्वकृतक्रियः ॥
बदरीनाथभवनं गतवान् विष्णुतत्परः ॥ ३६ ॥

वहां उन तीर्थोंमें सब क्रियासे युक्त स्नान करके विष्णुमें तत्पर होकर बदरीनाथके भवनमें गया ॥ ३६ ॥

प्रदक्षिणं च कृतवान् ननाम बहुशो हरिम् ॥
प्रसादं बदरीशस्य भुक्तवांश्च मुदान्वितः ॥ ३७ ॥

और हरिके बहुत नाम लेकर हरिकी प्रदक्षिणा की तथा आनन्दित होकर प्रसाद भक्षण किया ॥ ३७ ॥

नमस्कृत्य पुनर्गेहमाययौ भक्तितत्परः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो बभूव द्विजनन्दनः ॥ ३८ ॥

भक्तिमें तत्पर होकर फिर नमस्कार करके घर लौट आया और वह वैश्यका पुत्र सब पापोंसे छूट गया ॥ ३८ ॥

उत्पाद्य बहुशः पुत्रांस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
ययौ पितृगणैर्युक्तः स्तूयमानः सुरोत्तमैः ॥ ३९ ॥

और बहुत पुत्रोंको उत्पन्न करके विष्णुके परमपदको देवताओंद्वारा स्तुति किया हुआ पितृगणोंके साथ प्राप्त हुआ ३९॥

इति ते बदरीनाथदर्शनस्य च वैभवम् ॥
पुण्यं पवित्रमाख्यातं किमन्यत्कथयामि ते ॥ ४० ॥

इस प्रकार तुमसे बदरीनाथके दर्शनका वैभव पवित्र आख्यान कहा और जो सुननेकी इच्छा हो सो कहूं ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां भाषाटीकासमन्वितायां बदरीमाहात्म्ये वैश्योपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमाऽध्यायप्रारंभः ७.

अरुंधत्युवाच ।

अष्टादशब्राह्मणानां हत्यांवै जनमेजयः ॥
प्राप्तवान् धर्मतत्त्वज्ञो भवितव्यमभूत् कथम् ॥ १ ॥

अरुन्धती बोली, वह धर्मके तत्त्वको जाननेवाला राजा जनमेजय अठारह ब्राह्मणोंको मारकर कैसे ब्रह्महत्याको प्राप्त हुआ और वह होनहार कैसे हुई ॥ १ ॥

एतद्विस्तरतो ब्रूहि भगवन् संशयोऽस्ति मे ॥
निर्मुक्तश्च कथं नाम महतः पापसंचयात् ॥ २ ॥

सो हे भगवन् ! यह विस्तारपूर्वक कहो मुझे संदेह है कि, वह किस प्रकार इस बडे पापसे छूटा ॥ २ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

शृण्वरुन्धति वृत्तान्तं पारीक्षितनृपस्य हि ॥
एकदा नृपतेस्तस्य यज्ञे सर्पभयानके ॥ ३ ॥

वसिष्ठजी बोले, हे अरुंधति ! जनमेजयके वृत्तांतको सुनो । एक समय उस राजाके भयानक सर्पसत्रके ॥ ३ ॥

पूर्णे चावभृथस्नाने भगवान् मुनिनायकः ॥
प्रपौत्रो मम रंभोरु व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ ४ ॥

पूर्ण होकर स्नान करनेपर हे रंभोरु ! मेरे प्रपौत्र मुनिनायक सत्यवतीके पुत्र व्यासजी ॥ ४ ॥

जगाम भवने राज्ञोऽनेकशिष्यैः समावृतः ॥
आगतं तमृषिं ज्ञात्वा राजासौ जनमेजयः ॥५॥

अनेक शिष्योंके साथ जनमेजयके भवनमें गये । आते-हुए उन ऋषिको जानकर राजा जनमेजय ॥ ५ ॥

आययौ भक्तिसंपन्नो ह्यानेतुं बादरायणिम् ॥
तं दृष्ट्वा सहसा राजा प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥६॥

मुनिके लेनेको आया और भक्तिपूर्वक उन को देखकर बारंबार प्रणाम करने लगा ॥ ६ ॥

करं दक्षं तु संगृह्य मुनिं सर्वविशारदम् ॥
प्रवेशयामास गृहं नानारत्नोपशोभितम् ॥ ७ ॥

और सर्वविद्याविशारद मुनिका दहिना हाथ पकडकर रत्नोंसे शोभित घरमें प्रवेश करता हुआ ॥ ७ ॥

पाद्यमाचमनीयं च स्वासनं रत्नभूषितम् ॥
ददौ तस्मै महाराजोऽभिमन्योरात्मजात्मजः ॥८॥

राजा जनमेजयने पाद्य आचमन तथा अपना आसन मुनिके निमित्त दिया इसप्रकार भलीभाँतिसे मुनिकी पूजा करके८॥

जनमेजय उवाच ।

धन्योस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य त्वं गृहमागतः ॥
कुशलं तवशिष्येषु कच्चित्ते तपसि स्थितः ॥९॥

जनमेजय बोला, मैं धन्य हूं मेरे ऊपर बडी कृपा की जो मेरे घर तुम आये और तुह्मारे शिष्योंमें कुशल है तथा आपके तपमें कुशल है ॥ ९ ॥

अग्निहोत्रेषु वेदेषु आश्रमीयमृगेषु च ॥
किमागमनकृत्यं ते तव किं करवाणि भोः॥१०॥

अग्निहोत्र वेद तथा आश्रमके मृगोंमें कुशलहै हेभगवन् ! आपके आनेका कारण क्या है और मैं क्या करूं सो कहिये॥ १०॥

व्यास उवाच ।

त्वयि राजनि सर्वत्र कुशलं मे नृपेश्वर ॥
धन्योऽसि त्वं महाबाहो यस्य ते मतिरीदृशी॥११॥

व्यासजी बोले, हे नृपेश्वर ! तुम्हारे राजा होनेसे मेरे सब स्थानोंमें कुशल है । हे महाबाहो ! तुम धन्य हो जो तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥ ११ ॥

कुरूणां पश्चिमो राजा धर्मिष्ठो जनमेजयः॥
मम पौत्रा महात्मानो युधिष्ठिरमुखा नृपाः ॥१२॥

मेरे पोते महात्मा युधिष्ठिर राजाओंमें धर्मिष्ठ हुए तुम जनमेजय कुरुवंशके पिछले राजा धर्मात्मा हो ॥ १२ ॥

तेषां प्रपौत्रोऽसि भवान् स्नेहो मे बहुलस्त्वयि ॥
दिष्ट्या त्वं कृतयज्ञोऽसि पितुरुद्धारकारकः ॥१३॥

और उन युधिष्ठिर आदिकोंके तुम परपोते हो इस कारण तुममें मेरा स्नेह है, पिताके उद्धारक तुमने प्रारब्धके योगसे यह यज्ञ किया ॥ १३ ॥

द्रष्टुं त्वां नृप प्राप्तोऽस्मि धन्यः कुरुकुलोद्वह ॥
इदं सर्वं तु यज्जातं कुरूणां च कुलक्षयम् ॥१४ ॥

हे कुरुकुलोद्वह ! तुम धन्य हो तुम्हारेही देखनेको मैं आया हूं यह जो कुछ कुरुओंके कुलका क्षय हुआ है ॥ १४ ॥

भाव्यमेवेति संजातमहं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥
दिष्ट्या त्वमपि धर्मात्मा कुरूणां वंशवर्द्धनः॥१५॥

यह होनहारही था मैंने प्रत्यक्ष देखा । कुरुओंके वंशको बढानेवाले तुम भी धर्मात्मा दैवयोगसे हुए हो ॥ १५ ॥

जनमेजय उवाच ।

भवता जनिता भाव्यं यतः प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥
उक्तं तेभ्यः कथं ब्रह्मन् भवितव्यं न हि त्वया॥१६॥

जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन् ! तुमने प्रत्यक्ष देखनेके कारण वह होनहार जान ली थी तो वह होनहार तुमने उनसे क्यों नहीं कही? ॥ १६ ॥

उक्तं चापि त्वया सर्वं किमर्थं संगरः कृतः ॥
वैरं नाभूद्विना हेतुं पूर्वमेव पितामहैः ॥ १७ ॥

और जब तुमने कह दिया था तो उन्होंने युद्ध क्यों किया क्योंकि हमारे पितामहाओंका विना कारण वैर नहीं हुआ था ॥ १७ ॥

एतन्मे संशयं छिंधि सर्वज्ञो नास्ति त्वत्समः ॥
धर्मात्मनां महाभाग नैवं भवितुमर्हति ॥ १८ ॥

हे मुने ! इस मेरे संदेहको दूर करो, क्योंकि तुम्हारे समान कोई धर्मका जाननेवाला नहीं है । हे महाभाग ! धर्मात्माओं-को यह होना योग्य नहीं था ॥ १८ ॥

व्यास उवाच ।

भवितव्यं भवत्येव विज्ञानामपि पार्थिव ॥
निमित्तमात्रं भवति कर्त्ता हर्त्ता न संशयः ॥ १९ ॥

व्यासजी बोले, हे राजन् ! ज्ञानियोंकोभी होनहार होती है। मनुष्य तो निमित्तमात्र कर्ता हर्ता होताहै इसमें संदेह नहीं॥ १९॥

इन्द्रोऽपि राज्याद्विभ्रष्टो नहुषःस्वश्च्युतस्तथा ॥
रामो दाशरथिर्वीरःसर्वात्मा दृढविक्रमः ॥ २० ॥

इन्द्र तथा नहुष भी राज्यसे भ्रष्ट हुआ और सर्वात्मा दृढ-विक्रमी वीर रामचन्द्रभी ॥ २० ॥

प्राप्तवान् सोऽपि दुःखं हि नहुषश्च महीपतिः ॥
जानद्भिरेतैर्नृपते न कृतं दूरतस्तथा ॥ २१ ॥

तथा नहुष राजा दुःखको प्राप्त हुआ. हे राजन् इन्होंने जानकर भी होनहारको दूर नहीं किया ॥ २१ ॥

भवितव्यं महाराज न वृथा भवति क्वचित् ॥
एतत्सर्वं मयाख्यातं पृष्टं यद्भवता नृप ॥ २२ ॥

हे महाराज ! होनहार कहींभी निष्फल नहीं होती । हे राजन् ! जो कुछ तुमने बूझा सो सब कहा ॥ २२ ॥

जनमेजय उवाच ।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्यास सत्यवतीसुत ॥
वदान्यदपि यद्भाव्यं न कुर्यामहमप्यथ ॥ २३ ॥

जनमेजय बोले, हे व्यास सत्यवतीसुत ! तुम सर्वधर्मज्ञ हो और भी भवितव्य कहो, क्योंकि मैं वैसा न करूं मेरे विषयमें क्या होनहार है सो कहो ॥ २३ ॥

किमग्रे भविता ब्रह्मन् राज्ये मत्पालिते प्रभो ॥
भवेद्यावन्महाभाग भवितव्यं न वै मुने ॥ २४ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! मेरे पालेहुए राज्यमें आगेको क्या होगा सो जबतक भवितव्य न हो तबतक कहो ॥ २४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

इति तद्भाषितं श्रुत्वा व्यासःसत्यवतीसुतः ॥
विहस्य वचनं प्रोचे भवितव्यं विजानता ॥ २५ ॥

वसिष्ठजी बोले, इस प्रकार उसके वचनको सुनकर भवितव्य (होनहार) के जाननेवाले सत्यवतीके पुत्र व्यासजी हँसकर बोले ॥ २५ ॥

व्यास उवाच ।

भविष्यत्येव यद्भाव्यं परं शृणु महीपते ॥
अतःषोडशदिवसे विक्रेता जनमेजय ॥ २६ ॥

व्यासजी बोले, हे महीपते ! होनहार होतीही है सुनो । हे जनमेजय ! आजसे सोलहवें दिन ॥ २६ ॥

हयानां सिंधुजातानां नाम्ना वै क्षेमकर्णकः ॥
एको वै भविता तत्र तुरगो ह्यतिवेगवान् ॥ २७ ॥

सिंधुदेशके घोडोंका बेचनेवाला क्षेमकर्णक नामक आवेगा, उन घोडोंमें एक घोडा अतिवेगवाला होगा ॥ २७ ॥

तमारोहयितासि त्वं वेगवन्तं महीपते ॥
नयिष्यति तदा त्वां हि विपिने निर्जने त्वरम्॥२८॥

और हे राजन् ! उस वेगवान् घोडेपर तुम चढोगे, फिर वह घोडा तुमको निर्जन (मनुष्यरहित)वनमें शीघ्र ले जायगा ॥२८॥

तत्र द्रष्टासि नृपते नारीं परमसुन्दरीम् ॥
तां दृष्ट्वा त्वं महाराज कामस्य वशमागतः ॥ २९ ॥

हे राजन् ! उस वनमें परमसुन्दरी स्त्रीको देखोगे, उसको देखकर कामके वशीभूत होजाओगे ॥ २९ ॥

मोहितश्चापि भविता दृष्ट्वा तां रतिरूपिणीम् ॥
तां ग्रहीतुं महाराज भविष्यति तदा किल ॥ ३० ॥

रतिरूपिणी उस स्त्रीको देखकर मोहित भी हो जाओगे । हे राजन् ! तुम उसको लेनेकी इच्छा करोगे ॥ ३० ॥

सा वदिष्यति मे राजन् एते ब्राह्मणपुंगवाः ॥
भर्तारो मम सन्तीति तान्मारय महीपते ॥३१॥

और हे राजन् ! वह स्त्री कहेगी कि, ये ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मेरे स्वामी हैं । हे महीपते ! इनको मार डालो ॥ ३१ ॥

निर्भयं ते भविष्यामि भार्या परमसुन्दर ॥
पाणिं गृह्णीष्व मे शीघ्रं ग्रहीतुं यदि चेच्छसि ॥३२॥

तौ मैं निर्भय तुह्मारी स्त्री होऊंगी । यदि ग्रहण करनेकी इच्छा है तौ शीघ्र पाणिग्रहण करो ॥ ३२ ॥

तस्मिन्नेव हि काले त्वं भवितव्यविमोहितः ॥
मारयिष्यसि तान्विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान् ॥ ३३ ॥

उसी समय होनहारसे मोहित हुए तुम वेदवेदांगके पारगामी ब्राह्मणोंको मारोगे ॥ ३३ ॥

सापि नारी तु तत्सर्वं कृत्वान्तर्धानमेष्यति ॥
इति ते कथितं राजन्यद्भविष्यति तेऽग्रतः ॥ ३४ ॥

और वह स्त्रीभी यह सब कृत्य करके अन्तर्द्धान हो जायगी। हे राजन् ! जो होनहार तुह्मारे आगे होनेवाली है सो कहदी ॥ ३४ ॥

स्वस्तितेऽस्तु गमिष्यामि कैलासे पर्वतोत्तमे ॥
गंधमादनशृङ्गे तु श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ ३५ ॥

५

हे राजन्! तुम्हारा मंगल हो और मैं पर्वतोंमें उत्तम कैलास पर्वत तथा गंधमादनके शिखर बदरिकाश्रमको जाताहूं ३५॥

वशिष्ठ उवाच ।

इत्युक्त्वा वचनं देवि पाराशर्यो महामुनिः ॥
शिष्यैः परिवृतो विप्रैर्बदर्य्याश्रममंडले ॥ ३६ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवि ! पाराशर्य व्यास महामुनि इस प्रकार कहकर शिष्य और ब्राह्मणोंसे युक्त हुए बदर्य्याश्रम मंडलमें स्थित हुए ॥ ३६ ॥

षष्टिलक्षं भारतं च निर्ममे ज्ञानिनां वरः ॥
अद्यापि तत्र देशे हि वर्त्तते व्यासपुस्तकम् ॥ ३७॥

और ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ व्यासजीने साठ लाख श्लोक भारतके निर्माण किये। आजतक उस देशमें व्यासपुस्तक स्थितहै ३७॥

यो वै पंचाह्निकं तत्र सोपवासो जितेन्द्रियः ॥
व्यासं सत्यवतीपुत्रं वरदं स हि पश्यति ॥३८॥

जो वहां पांच दिनतक उपवाससहित जितेन्द्रिय रहता है, उसको वरके दाता व्यासजीका दर्शन होता है ॥ ३८ ॥

सोऽपि राजा महाबाहुः संत्रस्तो जनमेजयः ॥
स्मरन् व्यासस्य वचनं सावधानोऽभवत्तदा ॥३९॥

वह महाबाहु राजा जनमेजयभी घबडाया हुआ व्यासजीके वचनको स्मरणकरके सावधान मनसे स्थित हुआ ३९॥

नाचचक्षे स कस्मैचिद्गुह्यं परमकं प्रिये ॥
ततः षोडशदिवसे प्रातरेव कृतक्रियः ॥४० ॥

हे प्रिये ! वह परमगुह्यतर वृत्तान्त राजाने किसीसे नहीं कहा। सोलहवें दिन प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर ४० ॥

मंत्रिणश्च सुभृत्यांश्च उवाच जनमेजयः ॥
अद्य मां यः प्रभाषेत स मे वध्यो भविष्यति ॥४१॥

जनमेजय मंत्री और नौकरोंसे बोला कि आज जो कोई मुझसे बोलेगा वह मेरे हाथसे मारा जायगा ॥ ४१ ॥

इत्याभाष्य नृपस्तूर्णं शुद्धान्तं प्रविवेश ह ॥
मुद्रयित्वा कपाटादीनेकाकी जनमेजयः ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वह राजा कहकर शुद्धान्तःपुरमें प्रवेश कर गया और किवाँडोंको बन्द करके अकेला जनमेजय ॥ ४२ ॥

सुष्वाप च महाभागे पर्यंके शयने शुभे ॥
ततः पराह्णसमय आगतः क्षेमकर्णकः ॥ ४३ ॥

अच्छे शयन करनेके पलंगपर सो रहा। हे महाभागे ! उस दिन दुपहरके समय वह क्षेमकर्णक आया ॥ ४३ ॥

विक्रेतुं तुरगान्देवि बहून्वै वातरंहसः ॥
दृष्ट्वा नागरिकास्तान्वै सिन्धुसौवीरदेशजान् ॥४४॥

पवनकी समान वेगवाले घोडे बेचनेको आया और वे नगरवासी जन सिन्धु और सौवीरदेशमें उत्पन्न हुए घोडोंको देखने लगे ॥ ४४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजा भाविकर्मविमोहितः ॥
गवाक्षजालसंछन्नो ददर्श कौतुकं महत् ॥ ४५ ॥

उसी समय भाविकर्मसे मोहित हुआ राजा महलके झरोखोंमेंसे उस कौतुकको देखने लगा ॥ ४५ ॥

ददर्श च हयं राजा चपलं तुरगं प्रिये ॥
सर्वलक्षणसंपन्नं दुष्टचिह्नविवर्जितम् ॥ ४६ ॥

और हे प्रिये ! राजाने सर्वलक्षणसंपन्न चपल और दुष्ट (खोटे) चिह्नोंसे रहित उस घोडेको देखा ॥ ४६ ॥

चिन्तयामास राजापि ह्यागतस्तुरगोप्ययम् ॥
उद्घाटच तद्गवाक्षं वै स्थितवान् कौतुकान्वितः ॥४७॥

और राजाने यह भी विचारा कि, यह वही घोडा आगया-झरोखा खोलकर कौतुकसे स्थित होगया ॥ ४७ ॥

आरोहयामि तुरगं गमिष्यामि न वै वने ॥
यतोऽस्वतंत्रस्तुरग इत्येवं चिन्तयन्नृपः ॥४८॥

और विचारा कि, इस घोडेपर चढूँगा पर वनमें नहीं जाऊंगा, क्योंकि घोडा तौ अपने आधीन है ॥ ४८ ॥

अवततार स्वगेहात् क्षीणपुण्यो यथा नरः ॥
आरुरोह हयं तूर्णं दर्शयन् हयलाघवम् ॥ ४९ ॥

तब अपने घरसे इस प्रकार उतरता हुआ जैसे कोई क्षीण-पुण्य हुआ पुरुष स्वर्गसे गिरता हो और सुन्दर घोडेकी चंच-लता देखता हुआ शीघ्रतासे चढा ॥ ४९ ॥

मोहितो भवितव्येन चकार नृपतिर्जवम् ॥
रेखेव वाजिनां यद्वद्वाजिनश्च जवक्रमे ॥ ५० ॥

होनहारके कारण मोहित होकर राजाने उसपर चढनेका उपक्रम किया और घोडा रेखाकी समान वेगसे चला ॥५०॥

रेजे सव्यापसव्येन द्विमुखो हयसत्तमः ॥
वलये वलयाकारस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५१ ॥

और वह श्रेष्ठ घोडा दहिने बायें गतिसे द्विमुखकी समान शोभित हुआ और घूमताहुआ कंगनकी समान दीखा यह वडी अद्भुत बात हुई ॥ ५१ ॥

इति वै लालयन्नश्वं चकार हयलाघवम् ॥
अथो राजा महाबाहुर्भाविकर्मविमोहितः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार लालन करते हुए घोडेकी गति वडी तीव्र की तब महाबाहु राजा होनहारसे मोहित हुआ ॥ ५२ ॥

जवक्रमं चकाराशु कर्मणा वै विकर्षितः ॥
निन्ये तत्र महाराजं तुरगो ह्यतिवेगवान् ॥ ५३ ॥

कर्मसे खींचेहुए जनमेजयने उस घोडेको शीघ्रही शीघ्र वेग-वाला कर दिया और वह घोडा महाराजको ॥ ५३ ॥

वने मृगगणाक्रान्ते झिल्लीझंकारनादिते ॥
एतस्मिन्नन्तरे काले ददर्श स्त्रियमेकलाम् ५४ ॥

जहां मृगसमूह और झिल्लीझंकार शब्द होता था उस वनमें लेगया, उसी समय एक सुन्दर स्त्रीको राजाने देखा ॥ ५८ ॥

श्यामां सुनेत्रां चार्वंगीं कामस्येव रतिं तथा ॥
दृष्ट्वा तां मोहमापन्नो जगाद वचनं नृपः ॥ ५५ ॥

सोलह वर्षकी अवस्थावाली सुन्दर नेत्र और सुन्दर अंग-वाली कामदेवके स्त्रीकी समान थी, उसको देखकर मोहयुक्त हो राजा बोला ॥ ५५ ॥

का त्वं कस्य किमर्थं वै वनेऽस्मिन्निर्जने शुभे ॥
त्वदधीनोऽस्म्यहं भद्रे शाधि मां कामपीडितम् ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा बभाषे वचनं ततः ॥ ५६ ॥

तुम कौन और किसकी स्त्री हो, इस निर्जन शुभ वनमें किस निमित्त आई हो ? हे भद्रे ! मैं तुम्हारे अधीन हूं, कामसे पीडित हुए मुझे शान्ति दो । इस प्रकार राजाके वचनको सुनकर वह स्त्री बोली ॥ ५६ ॥

स्त्र्युवाच ।

भो भो राजन्महाबाहो शृणु मे वचनं शुभम् ॥
एत अष्टादश प्रोक्ता ब्राह्मणाश्च जितेन्द्रियाः ॥५७॥

स्त्री बोली, भो भो राजन् महाबाहो ! मेरे मनोहर वचन सुनो यह अठारह जितेन्द्रिय ब्राह्मण हैं ॥ ५७ ॥

वृद्धाः परं महाभाग भृशमुद्विग्नमानसाः ॥
नित्यं वसामि दुःखेन यौवनोन्मादशालिनी ॥५८॥

हे महाभाग! ये अत्यन्त वृद्धहैं इनका सदा उद्विग्न मन रहता है, यौवनके मदवाली मैं नित्य दुःखी रहतीहूं ॥ ५८ ॥

त्वादृशं हि महाराज शरणागतपालकम् ॥
अन्वेषयामि सर्वत्र को मे दुःखं हरेत्प्रभो ॥ ५९ ॥

हे महाराज ! तुम्हारी समान शरणागत पालकको सर्वत्र ढूँढती हूं । हे प्रभो ! कौन मेरे दुःखको दूर करे । यही निरन्तर विचार करती रहती हूं ॥ ५९ ॥

महाराज महाभाग भाग्येन मिलितो ह्यसि ॥
एते वृद्धतराः क्रूरा नित्यं वै विजितेन्द्रियाः ॥६०॥

हे महाराज महाभाग ! तुम भाग्यसेही मिले हो । ये बूढे क्रूर नित्य जितेन्द्रिय हैं ॥ ६० ॥

सा वेपमानहृदया दृष्ट्वा ताञ्श्मश्रुलांस्तथा ॥
तपस्विनः कर्कशांश्च कृशानां कर्कशाकृतीन् ॥ ६१ ॥

दाढी मूछवाले इनको देखकर मेरा हृदय कम्पित होता है, यह तपस्वी हैं तथा कर्कश और कृश हैं बहुत कर्कशाकृति (कठिन सूरतवाले) हैं ॥ ६१ ॥

वशिष्ठ उवाच ।

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवि तं बहुधा तु तत् ॥
करुणापूर्णहृदयो बभाषे वचनं पुनः ॥ ६२ ॥

वशिष्ठजी बोले, हे देवि ! अनेक प्रकारके उसके वचन सुनकर, करुणापूर्ण हृदय हो फिर राजा बोला ॥ ६२ ॥

राजोवाच ।

किं करोमि महाभागे येन त्वं सुखिनी भवेः ॥
कथमेते त्यजिष्यन्ति ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ॥ ६३ ॥

राजा बोला, हे महाभागे ! मैं क्या करूं जिससे तुम सुखी हो । अच्छे व्रतवाले ये ब्राह्मण तुमको किस प्रकार छोडेंगे ६३ ॥

स्त्र्युवाच ।

भो भो राजन्महाभाग दया ते हृदि यद्भवेत् ॥
एतान्मारय शीघ्रं त्वं मत्पाणिग्रहणं कुरु ॥ ६४ ॥

स्त्री बोली, हे महाभाग राजन् ! यदि तुम्हारे हृदयमें मेरे ऊपर दया है तो इन ब्राह्मणोंको मारकर मेरा पाणिग्रहण करो ॥ ६४ ॥

राजोवाच ।

कथं हन्यां महाभागे ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥
एतन्मे शंस सुभगे कथं ते सुप्रियं भवेत् ॥ ६५ ॥

राजा बोला, हे महाभागे ! वेदपारगामी इन ब्राह्मणोंको कैसे मारूं । हे सुभगे! वह मुझसे कहो तुम्हारा किसप्रकार प्रिय हो६५

स्त्र्युवाच ।

देह एव परो ह्यात्मा स्वस्य वै जनमेजय ॥
अयं सुखी यथा जायेत्कर्तव्यं तत्तथैव हि ॥ ६६ ॥

स्त्री बोली, हे जनमेजय ! अपना शरीरही परमात्मा है जिससे यह सुखी हो वही करना चाहिये ॥ ६६ ॥

राजोवाच ।

तव चेत्सुप्रियं सुभ्रु जायतेऽनेन कर्मणा ॥
त्वदर्थं वै करिष्यामि वधमेषां दुरात्मनाम्॥ ६७ ॥

राजा बोला, हे सुभ्रु ! इसी कर्मसे तेरा प्रिय है तो तेरे निमित्त इन दुरात्माओंका वध करूंगा ॥ ६७ ॥

वशिष्ठ उवाच ।

इत्युक्त्वा तां तथा राजा भाविकर्मप्रचोदितः ॥
विस्मृतं तच्च व्यासोक्तं कामस्य वशमागतः ॥६८॥

वशिष्ठजी बोले, भाविकर्मसे विमोहित हुआ राजा इसप्रकार उससे कहकर कामके वशीभूत हो गया और व्यासजीके वचनकी विस्मृति हो गई ॥ ६८ ॥

निजघान तदा विप्रान् खड्गेनैकेन सत्वरम् ॥
कामः प्रिये महाञ्शत्रुः सर्वेषां हृदि संस्थितः॥६९॥

एकही खड्गसे उन ब्राह्मणोंको शीघ्र मार दिया । हे प्रिये ! कामदेव बडा शत्रु है सबके हृदयमें स्थित रहता है ॥ ६९ ॥

यस्यावेशान्नरः सर्वं करोति हि वरानने ॥
प्रियान्पुत्रांस्तथा भर्तॄन्भ्रातॄन् ब्राह्मणसत्तमान्॥७०॥

हे वरानने ! जिसके आवेशसे मनुष्य सब कुछ कर डालता है। प्यारे पुत्र तथा स्वामी और भाई ब्राह्मणोंको ॥ ७० ॥

तृणवन्मन्यते कामी तस्मात् क्षेमेप्सुना त्यजेत् ॥
मारयित्वा तदा राजा ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ७१ ॥

कामी पुरुष तिनकेकी समान मानता है इस कारण कुशल चाहनेवाला पुरुष इसे छोडे । फिर राजा उन वेदपारगामी ब्राह्मणोंको मारकर ॥ ७१ ॥

आययौ तत्र सुभगे यत्र सा मिलिता ह्यभूत् ॥
न ददर्श ततस्तां वै विस्मितश्चाभवन्नृपः ॥ ७२ ॥

हे सुभगे ! वह राजा वहां आया जहां स्त्री मिली थी, तौ वहां उस स्त्रीको नहीं देखा और आश्चर्ययुक्त हो गया ॥७२॥

चिन्तयामास बहुशो राजाऽसौ जनमेजयः ॥
त्यक्त्वा गृहादिकं सर्वं ययौ बदरिकाश्रमे ॥ ७३ ॥

और वह जनमेजय वारंवार विचार करने लगा, तथा घर-आदिको छोडकर बदरिकाश्रमको चलदिया ॥ ७३ ॥

तत्र गत्वा महाभागे चक्रे प्रायोपवेशनम् ॥
व्यासपुस्तकपार्श्वे तु पंचरात्रं महीप्रभुः ॥ ७४ ॥

हे महाभागे ! वहां जाकर उसने मरनेकी इच्छा की और वह राजा व्यासपुस्तकके निकट पाँच रात्रिपर्यन्त ॥ ७४ ॥

निराहारो निरानन्दो मरणे कृतनिश्चयः ॥
व्यासं ददर्श नृपतिर्जटामण्डलधारिणम् ॥ ७५ ॥

निराहार (बिना भोजन किये) आनन्दरहित मरनेकी इच्छासे रहा। तत्पश्चात् जटामंडलधारी व्यासजीको देखा ७५॥

दण्डवत्प्रणिपत्यासौ परिक्रम्य पुनः पुनः ॥
उवाच वचनं त्रस्तो रक्ष रक्षेति चासकृत् ॥ ७६ ॥

दण्डवत् प्रणाम और वारंवार परिक्रमा करके घबडाकर वारंवार बोला मेरी रक्षा करो रक्षा करो ॥ ७६ ॥

उवाच वचनं व्यासो माभैर्माभैर्महीपते ॥
भवितव्यं भवत्येव मयोक्तं पूर्वमेव हि ॥ ७७ ॥

तब व्यासजीने कहा, हे महीपते ! मत डरो २ होनहार होतीही है मैंने पहलेही कहदिया था ॥ ७७ ॥

सांप्रतं शृण्वतां राजन् भारतं कल्मषापहम् ॥७८॥

इस समय हे राजन् ! पाप दूर करनेवाले भारतको सुनो७८॥

वशिष्ठ उवाच ।

शुश्राव भारतं सर्वं व्यासस्य वदनात्ततः ॥
निष्कल्मषो बभूवाथ श्रवणाद्भारतस्य हि ॥ ७९ ॥

वशिष्ठजी बोले, वह राजा व्यासजीके मुखसे भारत सुनता हुआ और भारतके सुननेसे पापरहित हो गया ॥ ७९ ॥

इति ते कथितं सुभ्रु भवितव्यस्य वैभवम् ॥
जनमेजयस्य च यथा ब्रह्महत्या बभूव ह ॥ ८० ॥

हे सुभ्रु ! यह होनहारका वैभव तुमसे कहा, जिस प्रकार राजा जनमेजयको ब्रह्महत्या लगी थी ॥ ८० ॥

बदर्याश्रममाहात्म्यात्तथा भारतसंश्रवात् ॥
राजाऽसौ कल्मषैर्हीनो बभूव वरवर्णिनि ॥ ८१ ॥

हे वरवर्णिनि ! बदर्याश्रमके माहात्म्यसे तथा भारतके सुननेसे यह राजा पापरहित होगया ॥ ८१ ॥

इदं यशस्यमायुष्यं ब्रह्महत्यानिवारणम् ॥
कथितं ते महाभागे किमन्यत्कथयामि ते ॥ ८२ ॥

वह ब्रह्महत्या दूर करनेवाला तथा यश आयुका दाता माहात्म्य कहा । हे महाभागे ! और तुम्हारे प्रति क्या कहूं सो कहो ॥ ८२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखंडे कैलासप्रशंसायां बदरीमाहात्म्ये जनमेजयोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमाऽध्यायप्रारंभः ८.

अरुन्धत्युवाच ।

कथय त्वं महाभाग मरणस्य च वैभवम् ॥
कुत्र तेषां गतिर्देव पतितस्य कथं गतिः ॥ १ ॥

अरुंधती बोली हे भगवन् ! आप बदरीनारायणके क्षेत्रमें शरीरत्यागका माहात्म्य कहिये उनको कैसा वैभव तथा कैसी गति होती है तथा पतितकी कैसी गति होती है ? ॥ १ ॥

बदरीनाथभवने क्षेत्रे क्षेत्रोत्तमे प्रभो ॥
एतन्मे शंस भगवञ्श्रोतुकामास्मि हे मुने ॥ २ ॥

हे मुने ! हे प्रभो ! क्षेत्रोंमें उत्तम बदरीनाथभवनमें शरीरत्यागका माहात्म्य कहो । हे भगवन् ! यह मेरे सुननेकी इच्छा है २

केन वै विधिना कुर्याद्यात्रां वै बदरीपतेः ॥
पुण्यं पवित्रमाख्यानं शृण्वंत्या भक्तिरुत्तमा ॥ ३ ॥

बदरीपतिकी किस प्रकार यात्रा करनी चाहिये इस पुण्य पवित्र आख्यानको सुननेसे उत्तम भक्ति उत्पन्न होती है॥ ३॥

वशिष्ठ उवाच ।

शृणु प्रिये प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं बदरीपतेः ॥
तीर्थश्रवणमाहात्म्ये धन्या ते बुद्धिरीदृशी ॥ ४ ॥

वसिष्ठजी बोले, हे प्रिये! बदरीनारायणका माहात्म्य कहता हूँ सुनो । तुम धन्य हो जो तीर्थमाहात्म्य सुननेमें तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥ ४ ॥

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि सावधानावधारय ॥
अवन्तिनगरे पूर्वं बभूवामितधार्मिकः ॥ ५ ॥

यहाँ एक इतिहास कहता हूँ सावधान होकर धारण करो पहले अवन्तिनगरमें एक बडा धार्मिक ॥ ५ ॥

चन्द्रगुप्त इति ख्यातो धनधान्यनिधिः प्रिये ॥
वाणिज्येन कृताजीवो दशपुत्रोऽमितप्रभः ॥ ६ ॥

चन्द्रगुप्तनामक धनधान्यका निधि (खजाना) था वाणिज्यसे आजीविका करता था और बडी कान्तिवाला था । तथा उसके दश पुत्र थे ॥ ६ ॥

संपत्तिर्बृहती तस्य गजाश्वादिमयी तथा ॥
हस्तिनां चैव दन्तानां विक्रेता स वरानने ॥ ७ ॥

हाथी घोडे आदिकोंकी बडी संपत्ति थी । हे वरानने ! हाथी और उनके दाँतोंको बेचा करता था ॥ ७ ॥

एकदा तस्य भवने धर्मदत्तो महीश्वरः ॥
बदर्याश्रमवासी वै आययौ भिक्षितुं विशाम् ॥ ८ ॥

एक समय उसके घर धर्मदत्त ब्राह्मण बदर्याश्रमका रहनेवाला भीख माँगनेको आया ॥ ८ ॥

तस्य वै दर्शनाद्वैश्यो बभूव मलवर्जितः ॥
पप्रच्छ तं धर्मदत्तं चन्द्रगुप्तो महामतिः ॥ ९ ॥

उस ब्राह्मणके दर्शनसे चन्द्रगुप्त पापरहित होगया और धर्मदत्तसे बूझने लगा ॥ ९ ॥

कुतः समागतो विप्र कुत्रत्योऽसि महामते ॥
मां किमाज्ञापयसि भोः किं करोमि तव प्रियम् ॥ १० ॥

कि, हे ब्राह्मण ! कहाँसे आये हो, कहाँ तुम्हारा स्थान है और मुझे क्या आज्ञा है क्या तुम्हारा प्रिय करूँ ॥ १० ॥

ब्राह्मण उवाच ।

अहं कैलासपार्श्वे वै बदरीवनमंडिते ॥
देशे वसामि नित्यं वै कण्वगोत्रसमुद्भवः ॥ ११ ॥

ब्राह्मण बोला, मैं कैलासपर्वतके निकट बदरीवनसे मंडित देशमें सदा निवास करता हूं और कण्वगोत्रमें उत्पन्न हुआहूं ११

भिक्षितुं त्वां समायातो बहुपुत्रकलत्रकः ॥
धनं मे नास्ति भवने ततस्त्वां समुपागतः ॥ १२ ॥

मेरे बहुत पुत्र और स्त्रियें हैं, तुमसे भीख माँगने आयाहूं मेरे घर धन (रुपया, पैसा) नहीं है इस कारण तुम्हारे पास आयाहूं ॥ १२ ॥

चन्द्रगुप्त उवाच ।

कुत्र वै तन्महाक्षेत्रं बदरीवनसंज्ञितम् ॥
कस्तत्र देवः पूज्येत तत्र किं किं फलं नरैः ॥ १३ ॥

चन्द्रगुप्त बोला, बदरीवन नामवाला वह क्षेत्र कहां है, वहां किस देवताकी पूजा होती है और मनुष्योंको उसका क्या फल प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥
यद्वदिष्यसि तत्सर्वमहं कर्त्तास्मि सुव्रतः ॥ १४ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तत्त्वपूर्वक सुननेकी इच्छा है । जो तुम कहोगे मैं व्रतसे स्थिर होकर सब करूंगा ॥ १४ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

गंगाद्वारात्पूर्वभागे त्रिंशद्योजनसंमिते ॥
वर्त्तते तन्महाक्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मण बोला, गंगाके द्वारसे एक सौ बीस कोस पूर्वको भुक्तिमुक्तिका देनेवाला वह क्षेत्र स्थित है ॥ १५ ॥

यत्र देवाः सगंधर्वा मुनयः शंसितव्रताः ॥
तपस्यन्ति महात्मानः संसारपरिमुक्तये ॥ १६ ॥

जहाँ गंधर्वोंसहित देवता और अच्छे व्रतवाले मुनिलोग महात्मा संसारसे छूटनेके निमित्त तपस्या करते हैं ॥ १६ ॥

अनन्तानि च तीर्थानि पापनाशकराणि वै ॥
गंगा तत्र महाभाग त्रैलोक्यपावनी परा ॥ १७ ॥

पापनाश करनेवाले अनेक तीर्थ वहां स्थित हैं और हे महाभाग ! त्रिलोकीको पवित्र करनेवाली गंगा वहां स्थितहै ॥ १७ ॥

बदरीनाथभवनं प्रणमेद्यो महीपतिः ॥
स वै विष्णुपुरं याति पूज्यमानो मुनीश्वरैः ॥ १८ ॥

जो बुद्धिमान् पुरुष बदरीनाथके भवनको प्रणाम करता है

वह मुनिश्वरोंसे पूजित होकर निश्चय विष्णुपुर (वैकुंठ) को जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ १८ ॥

सकृद्येनापि भवनं दृष्टं वै बदरीपतेः ॥
न स संसारमार्गस्य पान्थो जायेत कर्हिचित्॥१९॥

जिसने बदरीनारायणका भवन एकबार भी देखा है वह फिर इस संसारमें कभी भी जन्म नहीं लेता ॥ १९ ॥

बदरीनाथनैवेद्यं भक्तं यैर्भक्तितत्परैः ॥
अभोज्याशनदोषाद्यैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२०॥

भक्तिमें तत्पर होकर जिन्होंने बदरीनारायणका नैवेद्य भक्षण किया है वे अभोज्यादि (बिना खाने लायक) पदार्थ खानेसे जो दोष होताहै उससे छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ २० ॥

तस्यैव जन्म सफलं यो गतो बदरीपतिम् ॥
तस्य संसारजलधिर्महान्वै गोष्पदायते ॥ २१ ॥

उसीका जन्म (उत्पन्न होना) सफल है जो बदरीनारायण-को गया। उसको संसाररूपी समुद्र गौके खुरकी समान हो जाता है ॥ २१ ॥

इति ते कथितं वैश्य त्वया पृष्टोऽस्मि यद्यथा ॥
धन्योऽसि तीर्थयात्रायां यस्य बुद्धिर्महामते ॥२२॥

हे वैश्य ! जो तुमने बूझा सो तुम्हारे प्रति कहा। हे महीपते ! तुम धन्य हो जो तीर्थयात्रामें तुम्हारी ऐसी बुद्धि है ॥ २२ ॥

चन्द्रगुप्त उवाच ।

केनैव विधिना ब्रह्मन् कुर्याद्यात्रां रमापतेः ॥
किं भोज्यो वै किमाचारो गमने बदरीपतेः॥ २३॥

चन्द्रगुप्त बोला हे ब्रह्मन् ! किस विधिसे रमापति भगवान्‌की यात्रा करें । बदरीनारायणके जानेमें क्या भोजन करे और क्या आचार करे ॥ २३ ॥

एतत्सर्वं महाभाग कृपया परया युतः ॥
वद मे भक्तितः पृष्टो भवांश्च ब्रह्मपारगः ॥ २४ ॥

हे महाभाग ! यह सब कृपा करके कहो, ब्रह्मके पारको जाननेवाले तुमसे मैं बूझता हूँ ॥ २४ ॥

ब्राह्मण उवाच ।

शृणु धर्मज्ञ वक्ष्यामि प्रसंगाद्यन्मया श्रुतम् ॥
पृष्टस्ते सत्यधर्माय नारदोक्तं महामते ॥ २५ ॥

ब्राह्मण बोला, हे धर्मज्ञ ! सुनो मैं कहता हूँ जो मैंने प्रसङ्गसे सुना है । हे महामते ! बूझने पर सत्यधर्मके निमित्त जो नारदजीने कहा था ॥ २५ ॥

सत्यधर्मो महाराजा पप्रच्छ नारदं क्वचित् ॥
यदुक्तं तेन महता तत्सर्वं शृणु सुव्रत ॥ २६ ॥

सत्यधर्म राजाने नारदजीसे किसी समय बूझा । हे सुव्रत ! जो कुछ उन महात्मा नारदजीने उससे कहा था वह सब सुनो मैं कहता हूँ ॥ २६ ॥

कर्तव्या बदरीयात्रा भीतेन भवबन्धनात् ॥
संपूज्य गणपं पूर्वं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ २७ ॥

स्वस्तिवाचनपूर्वक पहले गणपतिका पूजन कर, संसारके बन्धनसे डरनेवाले मनुष्यको बदरीनारायणकी यात्रा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

पुण्याहं वाचयेत्तत्र बदरीनाथमानसः ॥
ततः संप्रार्थयेद्विप्रान्पूजितान् वसनादिभिः ॥ २८ ॥

बदरीनाथको मनमें रखकर पुण्याहवाचन करावे और वस्त्रादि देकर ब्राह्मणोंकी प्रार्थना करे ॥ २८ ॥

आज्ञापयध्वं भूदेवा मां वः शरणमागतम् ॥
भवतां कृपया देवाः कृतयात्रो यथा पुनः ॥ २९ ॥

कि, हे भूदेव ब्राह्मणों ! तुम शरणमें आये हुए मुझको आज्ञा- दो । हे ब्राह्मणों ! आपकी कृपासे यात्रा करके फिर ॥ २९ ॥

आगच्छेयं सुखं गेहे लभेय धर्मसुत्तमम् ॥
भवन्तो ब्रह्मणा पूर्वं निर्मिता धर्मदर्शकाः ॥ ३० ॥

सुखपूर्वक घर आऊँ और उत्तम धर्मको प्राप्त होऊँ । आपको ब्रह्माजीने पहलेहीसे धर्मका दर्शन करानेवाला बनाया है ३० ॥

सर्वे यज्ञास्तथा देवास्तीर्थानि विविधानि च ॥
भवच्चरणगेहानि ततो वो भक्तितो नमः ॥ ३१ ॥

सब यज्ञ, सब देव तथा अनेक प्रकारके तीर्थ आपके चर- णोंमें निवास करते हैं । इस कारण भक्तिपूर्वक तुम्हें नमस्कार है ॥ ३१ ॥

इति संप्रार्थ्य विप्रांस्तु धनकार्पटिवेषकः ॥
जितेन्द्रियः शुद्धमना भूमिशायी महामतिः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणोंकी आराधना करके, धनसे सत्कार कर जितेन्द्रिय तथा शुद्ध मन और भूमिमें शयन करे तथा बुद्धिमान् पुरुष ॥ ३२ ॥

संध्यात्रयमुपासीत एकस्थाने फलाशनः ॥
पद्भ्यां गच्छेन्नवै याने यदीच्छेद्धर्ममुत्तमम् ॥ ३३ ॥

एक स्थानमें फलमात्र खाकर तीनों संध्याओंमें उपासना करे। यदि उत्तम धर्मकी इच्छा करे तो पैरों पैरों यात्रा करे यान (सवारी) में न जाय ॥ ३३ ॥

गोयाने गोवधः प्रोक्तो वैफल्यं हययानतः ॥
अर्द्धं फलं नरारोहे तस्माद्यानं विवर्ज्जयेत् ॥ ३४ ॥

बैलकी सवारी करनेसे गोधवकी हत्या कही है और घोडेकी सवारीसे यात्रा निष्फल होती है । मनुष्यकी सवारीसे आधा फल होता है, इस कारण सवारीमें न जाय ॥ ३४ ॥

अन्नं परस्य नो भुंजेद्यतो निष्फलता स्मृता ॥
यद्यत्कर्म महाभाग क्रियते वै यदन्नकैः ॥ ३५ ॥

पराया अन्न न खाय कारण कि, फलकी निष्फलता हो जाती है । हे महाभाग ! उस पराये अन्नसे जो कर्म किया जाता है ॥ ३५ ॥

स तस्य किल्बिषं भुंक्ते अन्नदातुश्च तत्फलम् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्जयेत्सुधीः ॥ ३६ ॥

वह उसका पाप खाता है और उसका फल अन्न देनेवालेको होता है, इस कारण प्रयत्नसे बुद्धिमान् पुरुष पराये अन्नको छोडे ॥ ३६ ॥

अध्यात्मचिंतनं कुर्वञ्शृण्वन् वै तीर्थवैभवम् ॥
गच्छेन्नारायणं स्थानं सर्वदेवैरनुष्ठितम् ॥ ३७ ॥

अध्यात्मचिन्तन और तीर्थका वैभव सुनता हुआ सब देवताओंसे अनुष्ठित बदरीनारायणको जाय ॥ ३७ ॥

गंगाद्वारे समागत्य ह्यर्चयेन्नीलभैरवम् ॥
ततः संप्रार्थयेन्नाम्नो गंगायां कृतसत्क्रियः ॥ ३८ ॥

फिर गंगाके द्वारपर आकर नीलभैरवका पूजन करे और गंगाजीमें अच्छी क्रिया करके नाम लेकर प्रार्थना करे ३८॥

नमो नमस्ते भगवन् नीलभैरव क्षेत्रप ॥
अनुज्ञां देहि यात्रायै धन्यः स्यां त्रिजगत्सु वै ३९॥

हे क्षेत्रके रक्षा करनेवाले नीलभैरव भगवन् ! तुम्हारे प्रति नमस्कार है । यात्राके निमित्त मुझे आज्ञा दो मैं त्रिलोकीमें धन्य हूँ ॥ ३९ ॥

ततः कण्वाश्रमे गत्वा बदरीनाथक्षेत्रके ॥
तत्रत्येषु च सर्वेषु स्नात्वा चैव यथाविधि ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् बदरीनाथक्षेत्रमें कण्वऋषिके आश्रममें जाय और सब तीर्थोंमें विधिपूर्वक स्नान करे ॥ ४० ॥

ततः केदारभवनं गच्छेत्पापापनुत्तये ॥
केदारनाथं संपूज्य गृहीत्वाज्ञां ततः सुधीः ॥ ४१ ॥

फिर पापोंसे दूर होनेके निमित्त केदारभवनमें जाय और केदारनाथका पूजन तथा आज्ञा लेकर ॥ ४१ ॥

कार्यं बदरिकेशस्य दर्शनं शुभदायकम् ॥
अकृत्वा दर्शनं वैश्य केदारस्याघनाशिनः ॥ ४२ ॥

शुभदायक बदरिकेश भगवान्का दर्शन करना चाहिये । हे वैश्य ! पापनाशी भगवान् केदारके बिना दर्शन किये॥ ४२॥

यो गच्छेद्बदरीं तस्य यात्रा निष्फलतां व्रजेत् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूर्वं केदारदर्शनम् ॥ ४३ ॥

जो मनुष्य बदरीनारायणको जाताहै उसकी यात्रा निष्फल हो जातीहै । इस कारण प्रयत्नसे पहिले केदारनाथका दर्शन करना चाहिये ॥ ४३ ॥

कार्यं पुण्येप्सुना श्रेष्ठिन्न भेदः शिवकृष्णयोः ॥
क्षेत्रे सूक्ष्मे ततो गत्वा ऋषिगंगोत्तरे नरः ॥ ४४ ॥

पुण्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको हे श्रेष्ठिन् ! शिव कृष्णमें भेद नहीं है । फिर मनुष्य ऋषिगंगाके उत्तम सूक्ष्मक्षेत्रमें जाकर ॥ ४४ ॥

क्षेत्रोपवासं कुर्याद्वै दिनमेकं जितेन्द्रियः ॥
प्रातः स्नात्वा तु गंगायां नारदीयह्रदादिषु ॥ ४५ ॥

क्षेत्रमें जितेन्द्रिय होकर एक दिन उपवास करे और प्रातः— काल उठकर गंगा तथा नारदीय सरोवरमें स्नान करे ॥ ४५ ॥

वह्नितीर्थे ततः स्नायान्नियतो यतमानसः ॥
उपायनं यथाशक्त्या भक्त्या हि मनुजोऽर्पयेत् ४६ ॥

फिर मनको नियत करके वह्नितीर्थ में स्नान करे और भक्तिपूर्वक यथाशक्ति भेंट दे ॥ ४६ ॥

आकिरीटांघ्रिपर्यन्तं पश्येन्नारायणं विभुम् ॥
यथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यो दद्यादत्र महामनाः ॥४७॥

फिर चरणोंसे किरीटपर्यन्त विभु नारायणका दर्शन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको दान दे ॥ ४७ ॥

प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्भक्त्या परमया युतः ॥
ततस्तीर्थेषु चागत्य दद्याद्दानानिशक्तितः ॥ ४८ ॥

फिर भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा करे, तथा तीर्थोंमें आकर शक्त्यनुसार दान दे ॥ ४८ ॥

गोचर्ममात्रा पृथिवी येन दत्ता कुटुंबिने ॥
तेन सर्वामही दत्ता ब्राह्मणे वेदपारगे ॥ ४९ ॥

कुटुम्बी ब्राह्मणको जिसने गोचर्ममात्र पृथिवी दी मानो उसने वेदपारगामी ब्राह्मणको सब पृथिवीका दान करदिया ॥ ४९ ॥

त्रुटिमात्रं हिरण्यं वै दत्तं वेदविदे पुनः ॥
सुवर्णस्य तुलादानाद्यत्तत्फलमवाप्नुयात् ॥ ५० ॥

वेदवित् ब्राह्मणको जिसने त्रुटिमात्र भी सुवर्ण दिया उसको सुवर्णके तुलादानका फल प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

देवालये महाविष्णोर्गंगाया रोधसि प्रभो ॥
दीपा देयाश्चन्द्रगुप्त संसारपरिमुक्तये ॥ ५१ ॥

महाविष्णुके देवालयमें और गंगाजीके किनारे हे चन्द्रगुप्त ! संसारसे मुक्तिके निमित्त दीपदान करने चाहिये ॥ ५१ ॥

दीपदश्चक्षुराप्नोति स्वर्णदो वपुरुत्तमम् ॥
अन्नदस्तृप्तिमाप्नोति धातुदो भाग्यमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

दीपदान करनेवालेको अच्छे नेत्र मिलते हैं, स्वर्णदानीको उत्तम शरीर मिलता है, अन्नदानीको तृप्ति होती है और धातुदान करनेवाला भाग्यशाली होता है ॥ ५२ ॥

गोप्रदाता महाभाग संसारे न स जायते ॥
हयदो गजदश्चैव यानं प्राप्नोति सत्तमम् ॥ ५३ ॥

हे महाभाग ! गोदान करनेवाला मनुष्य इस संसारमें जन्म नहीं लेता और घोडे तथा हाथी देनेवालेको उत्तम यान (सवारी) मिलता है ॥ ५३ ॥

यदत्र क्रियते कर्म कोटिकोटिगुणं भवेत् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं नैवात्र कारयेत् ॥ ५४ ॥

जो कर्म इस स्थानमें किया जाता है उसका करोडगुणा फल प्राप्त होता है, इस कारण प्रयत्नपूर्वक यहाँ पापाचरण न करे ५४

अन्यान्यपि च तीर्थानि गच्छेद्वै भक्तितत्परः ॥
स्नायाद्यथोक्तविधिना दानं दद्याच्च भक्तितः ॥५५॥

और और तीर्थोंपर भी भक्तिमें तत्पर होकर जाय और यथोक्त विधिसे स्नान करे तथा भक्तिपूर्वक दान दे ॥ ५५ ॥

प्रसादं हरिनैवेद्यं भुंजीयाद्भक्तितत्परः ॥
ततःस्वगृहमागच्छेद्ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥ ५६ ॥

हरिका प्रसाद और नैवेद्य भक्तियुक्त होकर भक्षण करै । फिर अपने घर आकर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥ ५६ ॥

एवं यः कुरुते यात्रां न स भूयोऽभिजायते ॥
अश्वमेधादियज्ञानां फलं स्याच्च पदे पदे ॥ ५७ ॥

इस प्रकार जो बदरीनारायणकी यात्राको करता है वह फिर इस संसारमें उत्पन्न नहीं होता । अश्वमेधादि यज्ञोंका फल पद पदपर होता है ॥ ५७ ॥

धन्यः स्यात्त्रिषु लोकेषु सुरैरपि सुपूज्यते ॥
तस्मात् त्वमपि धर्मज्ञ गच्छ श्रीबदर्याश्रमे ॥ ५८ ॥

वह त्रिलोकीमें धन्यहै और देवताओंद्वारा पूजाजाता है । हे धर्मज्ञ ! इसकारण तुम भी श्रीबदर्याश्रममंडलको जाओ ॥५८॥

सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो जन्मजन्मार्जितैरपि ॥
मुक्तो भविष्यसि तदा सत्यं सत्यं न संशयः ॥ ५९ ॥

जन्मजन्मान्तरसे इकट्ठे हुए पापोंसे छूट जाओगे, यह सत्य सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५९ ॥

एतत्सर्वं महाभाग यत्पृष्टं कथितं तव ॥ ६० ॥

हे महाभाग ! यह जो कुछ तुमने बूझा सो तुम्हारे प्रति कहा अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ६० ॥

इति श्रीकेदारखण्डान्तर्गतबदरीनारायणमाहात्म्ये भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायप्रारम्भः ९.

वसिष्ठ उवाच ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥
यात्रामेव परां मेने बदरीनायकस्य सः ॥ १ ॥

वसिष्ठजी बोले, इसप्रकार उस महात्मा ब्राह्मणके वचनको सुनकर वह वैश्य बदरीनाथकी यात्राकोही परम मानता हुआ १ ॥

पुत्रैर्परिवृतः सर्वैर्बन्धुभिश्च सदारकैः ॥
यथोक्तविधिना चक्रे गमनादिविधिं प्रिये ॥ २ ॥

हे प्रिये ! वह वैश्य पुत्र बंधु तथा स्त्रीसहित यथोक्तविधिसे गमनादिकी विधिको करने लगा ॥ २ ॥

यथोक्तं तेन विप्रेण माहात्म्यं बदरीपतेः ॥
चकार तत्तथैवासौ चन्द्रगुप्तो महामतिः ॥ ३ ॥

उस ब्राह्मणने जिस प्रकार बदरीनारायणका माहात्म्य कहा था, वह चन्द्रगुप्त महामति उसी प्रकार करने लगा ॥ ३ ॥

एका तस्य वधू रम्या गजदन्तविभूषणा ॥
तस्याः करात्पपातापि गजदन्तविभूषणम् ॥ ४ ॥

एक उसकी मनोहर स्त्री थी, वह हाथीदांतके गहने पहर रही थी, उसके हाथसे उस स्थानमें एक हाथीदांतका गहना गिर पडा ॥ ४ ॥

शिलानां पंचके देवि स्नाता सा प्रियवादिनी ॥
एतस्मिन्नेव काले तु चन्द्रगुप्तादयस्तथा ॥ ५ ॥

हे देवि ! पंचाशिलासे स्नान करके वह प्रियवादिनी आई । उसी समयमें चन्द्रगुप्तादिकोंने ॥ ५ ॥

स्तूयमानं मुनिगणैर्ददृशुस्ते महागजम् ॥
विमानस्थं शंखचक्रगदापद्मविराजितम् ॥ ६ ॥

शंख चक्र गदा पद्मसे शोभायमान और मुनिगणोंसे स्तूयमान विमानमें स्थित हुये महागज (हाथी) को देखा ॥ ६ ॥

पुरुषं पुरुषैर्देवि नीयमानं तु वैष्णवैः ॥
तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं किमेतदिति चिन्तयन् ॥ ७ ॥

जो विष्णुरूप था और जिसको विष्णुके दूत लिये जाते थे उसको देखकर बडा आश्चर्य हुवा और विचारने लगे कि, यह क्या है ? ॥ ७ ॥

शुश्राव वाणीं मधुरां वैश्य वैश्येति चासकृत् ॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं गतोऽहं त्वत्प्रसादतः ॥ ८ ॥

हे वैश्य! हे वैश्य ! ! इस प्रकार मधुर वाणीको बारंबार सुनता हुआ । मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और तुम्हारे ही प्रसादसे जाता हूँ ॥ ८ ॥

गजो वै गुरुदन्तोहं वैकुण्ठे गमनं मम ॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा श्रेष्ठी परमविस्मितः ॥ ९ ॥

मैं गुरुदन्तनामका हाथी हूँ और वैकुण्ठको मेरा गमन हुआ है। इस प्रकार उसका वचन सुनकर वैश्यको अत्यन्त विस्मय हुआ ॥ ९ ॥

जगाद वचनं तं च चन्द्रगुप्तो वरानने ॥
केन वै कर्मणा हस्तिन् गतोऽसि परमां गतिम् ॥ १० ॥

हे वरानने ! वह चन्द्रगुप्त उस हाथीसे बोला, कि किस पुण्य कर्मके प्रतापसे तुम इस परमगतिको प्राप्त हुए ॥ १० ॥

उक्तं त्वया पराश्चर्यं मया ते किं कृतं गज ॥ ११ ॥

हे गज ! तुमने बडी आश्चर्ययुक्त वार्ता कही और मैंने तुम्हारे साथ क्या किया ॥ ११ ॥

गज उवाच ।

मम दन्तकृताभूषा वधू रम्या महामते ॥
तवेयं ह्यागता तीर्थे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ १२ ॥

गज बोला, हे महामते ! तुम्हारी वधूने मेरे दाँतके गहने बनाये थे वह इसबदरिकाश्रमतीर्थपर आई ॥ १२ ॥

त्रुटितं पतितं ह्यत्र भूषणं तत्कराद्विभो ॥
तेन पुण्यप्रभावेण निष्पापो ह्यभवँ स्तदा ॥ १३ ॥

हे विभो ! वह भूषण उसके हाथसे टूटकर गिरगया उस पुण्यके प्रभावसे मैं पापरहित हो गया हूँ ॥ १३ ॥

तिर्यग्योनिगतोऽहं च कुतो वैकुण्ठमन्दिरम् ॥
तव प्रसादात्प्राप्ता हि मया विष्णुसलोकता ॥ १४ ॥

तिर्यग्योनिको प्राप्त हुए मुझको वैकुंठ कहां मिल सक्ता था तुम्हारे ही प्रसादसे विष्णुकी सलोकता प्राप्त हुईहै ॥ १४ ॥

वसिष्ठ उवाच ।

इति तं कथयित्वासौ स्तूयमानो मुनीश्वरैः ॥
गतो वैकुण्ठभवने संभाष्य च पुनः पुनः ॥ १५ ॥

वसिष्ठजी बोले, इसप्रकार उससे कहकर मुनीश्वरोंसे स्तूयमान हुआ । वह वैश्य वारंवार भाषण करके वैकुंठभवन (मंदिर) में गया ॥ १५ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रेष्ठी महामनाः ॥
सर्वेभ्योऽभ्यधिकं मेने आत्मानं कृतदर्शनम् ॥ १६ ॥

वह श्रेष्ठी महामना वैश्य उस परम आश्चर्यको देखकर दर्शन करनेके कारण अपनी आत्माको सबसे अधिक मानता हुआ १६

सोऽपि तत्रैव निवसन् प्राणांस्तत्याज सुप्रियान् ॥
परमं लयमापन्नो जन्मनाशादिवर्जितः ॥ १७ ॥

वह वैश्यभी वहाँ रहकर अपने प्यारे प्राणोंको त्यागता हुआ, जीवनमरणसे रहित हो परम मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥

बभूवुस्तेऽपि तन्वंगि दाराः पुत्रास्तथा परे ॥
इह भुक्त्वा वरान् भोगानंते वै वैष्णवं ययुः ॥ १८ ॥

हे तन्वंगि ! उसके स्त्रीपुत्रादिकभी यहां अच्छे भोगोंको भोगकर अन्तमें वैकुंठको गये ॥ १८ ॥

इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघे ॥
पुण्यं यशस्यमायुष्यं पुत्रीयं धनधान्यकम् ॥ १९ ॥

यह पवित्र यश, आयु, पुत्र, तथा धन धान्यका देनेवाला तुम्हारे बूझनेपर सब कहा ॥ १९ ॥

माहात्म्यं बदरीशस्य सर्वपापविमोचनम् ॥
श्रुत्वा चैतन्महाभागे विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥२०॥

सब पापोंका दूर करनेवाला बदरीनारायणका महात्म्य है। हे महाभागे ! इसको सुनकर मनुष्यको विष्णुकी सायुज्यता प्राप्त होती है ॥ २० ॥

सर्वे मनोरथास्तस्य पूर्णाः स्युर्नात्र संशयः ॥
इदं माहात्म्यं यद्गेहे लिखितं वर्त्तते प्रिये ॥ २१ ॥

उसके सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं इसमें संदे नहीं। यह माहात्म्य जिसके घरमें लिखा हुआ स्थित है ॥ २१ ॥

आधिव्याधिभयं नैव चोरराजाग्निजं भयम् ॥
श्रीविष्णोर्नित्यसान्निध्यं यद्गेहे पुस्तकं त्विदम् ॥२२॥

उसको आधि व्याधिका भय तथा चोर, राजा, अग्निका भय नहीं रहता, जिसके घरमें यह पुस्तक है उसको विष्णुकी निकटता प्राप्त होती है ॥ २२ ॥

दुःस्वप्नो नश्यते शीघ्रं रोगी मुच्येत वै गदात् ॥
श्रुत्वा बदरिमाहात्म्यं वाचकाय ददेद्धनम् ॥ २३ ॥

दुःस्वप्न शीघ्र नष्ट हो जाता है, रोगी रोगसे छूटजाता है, बदरीनारायणके माहात्म्यको सुनकर वाचक (कथा कहनेवाले) केनिमित्त धन दे ॥ २३ ॥

एतत्सर्वं महाभागे नियमेन मम प्रिये ॥
इदं माहात्म्यं शृणुयात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२४॥

हे महाभागे ! हे प्रिये ! नियमपूर्वक जो इस माहात्म्यको सुने उसके सब कामनाओंकी सिद्धि होती है ॥ २४ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डान्तर्गतबदरीमाहात्म्ये पण्डितज्वाला-प्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
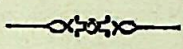
इति भाषाटीकासहितं

बदरीमाहात्म्यं

समाप्तम् ।
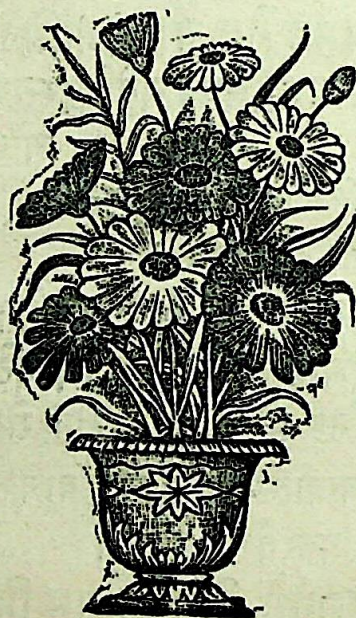
॥ श्रीः ॥

केदारखण्डान्तर्गत-

श्रीकेदारमाहात्म्य ।

श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत-

भाषाटीकासहित ।

जिसको

पंडित महेशानन्दशर्म्माने

मुंबईमें

मुद्रितकराय प्रकाशित किया.

संवत् १९६८, शके १८३३.

Printed at the "Shri Venkateshwar"
Steam Press, Bombay.

ॐ

॥ श्रीकेदारेश्वराय नमः ॥

अथ भाषाटीकासहितं

केदारमाहात्म्यम् ।
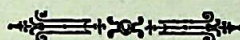
प्रथमोऽध्यायः १.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

पार्वत्युवाच ।

कथयस्व महादेव विस्तरान्मम क्षेत्रकम् ॥
केदारं नाम यत्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥ १ ॥

दोहा—नीलकण्ठ लावण्यनिधि, निज जन पूरण काम ।
शंकर शंकर जगतके, भजिये नित सुखधाम ॥ १ ॥

पार्वती बोली,हे महादेव ! विस्तारसे मेरे तईं केदार नाम क्षेत्र-का वर्णन करो जो कि स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है ॥ १ ॥

कानि कानि च तीर्थानि वर्त्तन्ते तत्र नायक ॥
किं पुण्यं किं, फलं चात्र स्नानैर्दानैर्महेश्वर ॥ २ ॥

हे स्वामिन् ! उसमें कौन कौनसे तीर्थ हैं ? हे महेश्वर ! वह सब अपनी प्रियासे कथन कीजिये ॥ २ ॥

कथमेतन्महज्जातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥
एतत्सर्वं महादेव प्रियायै कथय प्रभो ॥ ३ ॥

यह किस प्रकार सब तीर्थोंमें उत्तम है । हे महादेव ! यह सब अपनी प्रियासे कथन कीजिये ॥ ३ ॥

ईश्वर उवाच ।

इदं क्षेत्रं तु यत्प्रोक्तं मया देवि त्वयाधुना ॥
न त्यजामि कदाचिद्वै त्वत्तः प्रियतरं प्रिये ॥ ४ ॥

ईश्वर बोले, हे देवि ! यह जो क्षेत्रका माहात्म्य मैं तुमसे कहता हूं इसको मैं कभी त्यागन नहीं करता हूं और यह तुम से भी अधिक मुझको प्रिय है ॥ ४ ॥

पुरातनो यथाहं वै तथा स्थानमिदं किल ॥
यदा सृष्टिक्रियायां च मया वै ब्रह्ममूर्त्तिना ॥ ५ ॥

जैसे मैं पुरातन हूं उसी प्रकार यह स्थान भी पुरातन है, जिस समय ब्रह्ममूर्त्तियोंकी सृष्टि की थी ॥ ५ ॥

स्थितमत्रैव सततं परब्रह्मजिगीषया ॥
तदादिकमिदं स्थानं देवानामपि दुर्ल्लभम् ॥ ६ ॥

उस समय मैं यहीं स्थित हुआ था । उस दिनसे यह स्थान देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ६ ॥

नंदिभृंग्यादयः सर्वे द्वारदेशे प्रतिष्ठिताः ॥
ब्रह्माद्यास्त्रिदशाः सर्वे न जानन्ति मम स्थलम् ॥ ७ ॥

नन्दीभृंग्यादि सब द्वारदेशमें ही प्रतिष्ठित हैं, ब्रह्मादिक भी इस हमारे स्थानको नहीं जानते हैं ॥ ७ ॥

यया त्वया तत्र देशे क्रीडितं विस्मृतं त्वया ॥
इदमेव महत्स्थानं सुगोप्यं सर्वजन्तुषु ॥ ८ ॥

तुमने इस स्थानमें क्रीडा की है सो क्या तुमको इस बातकी सुधि नहीं है। यह संपूर्ण जन्तुओंको दुर्लभ स्थान है ॥ ८ ॥

मृतो यत्र महादेवि शिव एव न संशयः ॥
धन्यास्ते पुरुषा लोके पुण्यात्मानो महेश्वरि॥ ९ ॥

हे महादेवि ! जहां मृत्युको प्राप्त होकर प्राणी शिवरूप हो जाता है इसमें संदेह नहीं। हे महेश्वरि ! वह लोक धन्य और पुण्यात्मा है ॥ ९ ॥

ये वदन्त्यपि केदारं गमिष्यामि इति क्वचित् ॥
पितरस्तस्य देवेशि त्रिशतं कुलसंयुताः ॥ १० ॥

जो कहा करते हैं कि, हम कभी केदारमें जायँगे । हे देवि ! उसके पितर तीन सौ कुलके सहित ॥ १० ॥

गच्छन्ति शिवलोके तु सत्यं सत्यं न संशयः ॥
तथा सतीनां त्वं चैव देवानां च यथा हरिः ॥ ११ ॥

शिवलोकमें चलेजाते यह सत्य है इसमें संदेह नहीं । जैसे सतियोंमें तुम और देवताओंमें नारायण श्रेष्ठ हैं ॥ ११ ॥

सरसां सागरो यद्वत् सरितां जाह्नवी यथा ॥
पर्वतानां यथायं वै योगिनां याज्ञवल्क्यकः ॥ १२ ॥

सरोवरोंमें जैसे सागर, नदियोंमें जैसे गंगा हैं, पर्वतोंमें यह पर्वत और योगियोंमें जैसे याज्ञवल्क्य हैं ॥ १२ ॥

भक्तानां च यथा देवी नारदो भक्त ईरितः ॥
शिलानां च यथा शालिग्रामशिला तु वैष्णवी ॥ १३ ॥

हे देवि ! जैसे भक्तोंमें नारद और शिलाओंमें जैसे शालिग्रामशिला ॥ १३ ॥

अरण्यानां यथा प्रोक्तं बदर्यारण्यसंज्ञितम् ॥
धेनूनां च यथा कामधेनुर्वै परिकीर्तिता ॥ १४ ॥

वनोंमें जैसे बदरीवन, धेनुओंमें जैसे कामधेनु कही है ॥ १४ ॥

मनुष्याणां यथा विप्रो विप्राणां ज्ञानदो यथा ॥
स्त्रीणां पतिव्रता यद्वत्प्रियाणां पुत्र एव च ॥ १५ ॥

मनुष्योंमें जैसे ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें जैसे ज्ञानका देनेवाला, स्त्रियोंमें जैसे पतिव्रता, प्रियजनोंमें जैसे पुत्र ॥ १५ ॥

पदार्थानां यथा स्वर्णं मुनीनां च यथा शुकः ॥
सर्वज्ञानां यथा व्यासो देशानामयमेव च ॥ १६ ॥

पदार्थोंमें जैसे सोना, मुनियोंमें जैसे शुक, सर्वज्ञोंमें जैसे व्यास देशोंमें जैसे यह देश ॥ १६ ॥

नराणां च यथा राजा सुराणां वासवस्तथा ॥
वसूनां धनदो यद्वत्पुरीणां मामकी यथा ॥ १७ ॥

नरोंमें जैसे राजा, देवताओंमें जैसे इन्द्र, वसुओंमें जैसे कुबेर, पुरियोंमें जैसे मेरी पुरी ॥ १७ ॥

रम्भा चाप्सरसां यद्वद्गंधर्वाणां च तुम्बुरुः ॥
क्षेत्राणां च यथा प्रोक्तं क्षेत्रं केदारसंज्ञितम् ॥ १८ ॥

अप्सराओंमें जैसे अप्सरा रंभा, गंधर्वोंमें जैसे तुम्बरु, इसी प्रकार क्षेत्रोंमें उत्तम केदारक्षेत्र है ॥ १८ ॥

अयि देवि पुरावृत्तं व्याधस्यैणस्य तच्छृणु ॥
मृगहंताऽवसद्व्याधो ग्रामान्ते विकरालकः ॥ १९ ॥

हे देवि ! एक व्याधेका एक पुरातन इतिहास कहते हैं । सुनो ग्रामके बाहर एक विकराल व्याधा निवास करता था १९ ॥

मृगमांसाशनो नित्यं विक्रेता सर्ववस्तुनः ॥
एकदा स महान् व्याधो मृगं हन्तुं गतो वने ॥२०॥

नित्य मृगोंका मांस खाता और सब वस्तुओंका विक्रय करता था । एक समय वह व्याधा मृगके मारनेको वनमें गया ॥ २० ॥

हतास्तत्र महादेवि मृगाश्च बहवस्तथा ॥
एवं हनन्मृगान् व्याधो ययौ केदारतीर्थके ॥ २१ ॥

हे देवि ! वहाँ उसने बहुतसे मृगोंका वध किया । इस प्रकार मृगोंको मारता हुआ केदारतीर्थपर गया ॥ २१ ॥

गच्छतस्तस्य देवेशि वने मुनिगणान्विते ॥
व्यदृश्यत मुनिश्रेष्ठो नारदो रणयन् गिरम् ॥२२ ॥

हे देवि ! वहाँ जाते हुए मुनिगणोंके मध्यमें वीणावादन करते हुए नारदजीको देखा नारदजीका स्वर्णमय वर्ण था ॥ २२ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि व्याधो वै हृष्टमानसः ॥
योऽयं गच्छति स्वर्णात्मा दिव्यरूपधरो मृगः ॥२३॥

तब उस समय वह व्याधा भी प्रसन्न होकर विचारने लगा कि, जो यह स्वर्णकी समान स्वर्णरूपधारी मृग गमन करताहै २३॥

एनं हत्वा स्वर्णमृगमहं स्वर्णमयो भवे ॥
अस्मिन् वै चिन्तयित्वा तु व्याधःपरमविस्मितः २४

इस स्वर्णरूपी मृगको मारकर मैं स्वर्णमय हो जाऊंगा यह विचार व्याधा परमविस्मित होकर ॥ २४ ॥

धनुः सज्जं चकाराशु बाणं संधाय कार्मुके ॥
यावन्निहन्ति तमृषिं तावदन्तर्दधे मुनिः ॥ २५ ॥

धनुषपर बाण चढाता हुआ जबतक उन ऋषिके बाण मारे कि तबतक मुनि अन्तर्धान होगये ॥ २५ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ॥
यावद्गच्छति चाग्रे तु ददर्श दर्दुरं बिले ॥ २६ ॥

यह परम आश्चर्य देख व्याधा बडा विस्मित हुआ जबतक आगे चला कि, बिलमें एक मेंडकको देखा ॥ २६ ॥

सर्पेण ग्रस्यमानं वै महाकायेन सत्वरम् ॥
यावद्ग्रसति मंडूकं सर्पः कालात्मको ह्ययम् ॥ २७ ॥

उसको एक बडी कायावाला सर्प ग्रास करता है। जबतक यह कालात्मा सर्प मंडूकको भक्षण करे ॥ २७ ॥

तावद्बभूव मंडूको नागयज्ञोपवीतकः ॥
अर्धचन्द्रधरः शीर्षे जटाटव्या विराजितः ॥ २८ ॥

तबतक वह मेंडक नागयज्ञोपवीती हो गया, शिरपर अर्धचन्द्रधारी जटाजूटसे विराजमान ॥ २८ ॥

कैलासाद्रिसमाभासो नृत्यन् गुणविराजितः ॥
त्रिशूली नीलकंठो वै हस्तिचर्माम्बरो विभुः ॥ २९ ॥

कैलासपर्वतकी समान श्वेत कांति, नृत्य करते हुए, गणोंसे शोभायमान, त्रिशूलधारी, नीलकंठ, हस्तिका चर्म धारण किये विभु (व्यापक) ॥ २९ ॥

इति तत्परमाश्चर्यं दृष्ट्वा वै व्याधपूरुषः ॥
किमेतद्वै कथं जातो मंडूकः सर्पवेष्टितः ॥ ३० ॥

रूप देखकर व्याधेको परम आश्चर्य हुआ और कहा सर्पसे वेष्टित यह मंडूक ऐसे रूपमें कैसे हो गया ॥ ३० ॥

रूपं कस्यत्विदं जातो मंडूकस्यान्यदेहकः ॥
किं वा स्वप्नमहं मन्ये जाग्रतो मे कथंभवेत् ॥ ३१ ॥

यह मंडूक किस देहीके रूपको प्राप्त होगया। क्या यह मैं स्वप्न देखता हूं परन्तु जागतेमें स्वप्न नहीं हो सकता ॥ ३१ ॥

भ्रमो मे हि कथं जातः स्वप्नस्थोऽस्मि च एव हि ॥
अथ चेदं कथंचिद्वै भूतोपद्रवकं किमु ॥ ३२ ॥

जब कि मैं स्वस्थ हूं तौ मुझे भ्रम किस प्रकार हो सकता है अथवा यह कोई भूतका उपद्रव है ॥ ३२ ॥

सन्निकर्षा मृतिर्मेऽद्य वर्त्तते विकृतिर्यतः ॥
किं करोमि क्व गच्छामि वनेऽस्मिन्भूतसेविते॥ ३३॥

अथवा इस भ्रान्तिसे मृत्यु समीप है, क्या इस भूतसेवी वनमेंसे अब मैं कहां जाऊं क्या करूं ? ॥ ३३ ॥

को मे रक्षामिदानीं हि करिष्यति महावने ॥
पश्यतो मे हि मंडूको विकृतिं वै कथं गतः ॥ ३४॥

इस वनमें इस समय मेरी कौन रक्षा करेगा मेरे देखते २ यह मंडूक कैसे विकारको प्राप्त हुआ ॥ ३४ ॥

इति चिंतासमाविष्टमना व्याधो हि तत्क्षणात् ॥
पलायनपरो जातो महेशि वनतो यदा ॥ ३५ ॥

यह व्याध मनमें चिन्ता करता था कि, उसी समय भयसे भागने लगा ॥ ३५ ॥

तावद्ददर्श व्याघ्रेण हन्यमानं मृगं किल ॥
पुष्टांगं सुन्दरांगं च महाव्याधो भयातुरः ॥ ३६ ॥

आगे जाकर एक व्याघ्रको मृगका वध करते देखा, जिसका पुष्ट और सुन्दर अंग था तब व्याधा बडा डरा ॥ ३६ ॥

तमेव हन्यमानं च मृगं वै शिवरूपिणम् ॥
पंचवक्त्रं त्रिनेत्रं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥ ३७ ॥

उस मरे हुए मृगको भी शिवस्वरूप, पांच मुख, तीन नेत्र, नागयज्ञोपवीतधारी देखा ॥ ३७ ॥

हन्ता यो देवदेवेशि मृगराट् सत्वरं हतः ॥
व्याधेनानेन केनापि बलीवर्दो बभूव ह ॥ ३८ ॥

हे देवि ! यह मारनेवाला व्याघ्र भी किसी व्याधेने मारा हुआ उसी समय बलीवर्दरूप हो गया ॥ ३८ ॥

आरुरोह वृषे तस्मिन्स वै पूर्वहतो मृगः ॥
शिवरूपधरः साक्षात् पश्यतस्तस्य सुन्दरि ॥ ३९ ॥

और वह पहला मृतक हुआ मृग इस वृषके उपर चढा । हे सुन्दरी ! इसके देखते २ यह शिवरूपधारी हो गया ॥ ३९ ॥

इति तत्र पराश्चर्यं दृष्ट्वा व्याधोऽतिविस्मितः ॥
चिन्तयामास बहुशः किमिदं किमिदं त्वहो ॥ ४० ॥

यह परम आश्चर्यरूप देखकर व्याधा बहुत विस्मित हुआ और वारंवार सोचनेलगा कि यह क्या है ? ॥ ४० ॥

पुलकांकितसर्वांगो विस्मयाविष्टमानसः ॥
पुनर्ददर्श देवेशि तमेव नारदं मुनिम् ॥ ४१ ॥

सब शरीर पुलकित होगया और विस्मयसे व्याप्त हो गया । हे देवेशि ! फिर उसने नारदमुनिका दर्शन किया ४१ ॥

तं दृष्ट्वा मनुजाकारं वने तस्मिन् भयावहे ॥
श्रुत्वा तु तन्मुखाद्वृत्तं तत्रत्यं मम वल्लभे ॥ ४२ ॥

उस भयानक वनमें उस मनुष्याकारको देखकर और उसके मुखसे मेरे वनका वृत्तान्त सुनकर नारदजी बोले ॥ ४२ ॥

व्याधः साधुरसाधुश्च वनं साधुरहो परः ॥
इति श्रुत्वा तु स व्याधो बभाषे नारदं मुनिम्॥४३॥

व्याधा साधु और असाधु है यह वन भी साधु है तब व्याधा उनके वचन सुन नारदजीसे बोला ॥ ४३ ॥

कथं साधुरहं ब्रह्मन्नसाधुश्च कथं वनम् ॥
साधु साध्विति यत्प्रोक्तं त्वया किं तद्वदस्व मे ॥४४॥

हे ब्रह्मन् ! मैं किस प्रकार साधु असाधु हूं और यह वन कैसे साधु है ? आपने जो साधु कहा सो इसका भेद कहो४४॥

व्याधेरितं तु तच्छ्रुत्वा विहस्य नारदोऽब्रवीत् ॥
धन्योऽसि लुब्धकश्रेष्ठ यत्त्वया तीर्थमुत्तमम्॥४५॥

व्याधेका वचन सुनकर नारदजी हँसकर बोले कि, हे श्रेष्ठ लुब्धक ! तुम धन्य हो । जो तुमने इस उत्तम तीर्थमें ॥४५॥

आगतं तादृशं चैव दृष्टं वै शुभदर्शनम् ॥
तस्मादुक्तं च मे साधुस्त्वमसाधुश्च तच्छृणु॥४६॥

आकर इसका माहात्म्य देखा और सुना, इससे मैंने साधु कहा और असाधुका वृत्तान्त सुनो ॥ ४६ ॥

तस्मादिदं तव व्याध ज्ञानं नेति शुभं परम् ॥
यस्य माहात्म्यतः शीघ्रं तिर्यग्योनिगतो ध्रुवम्॥४७॥

हे व्याध ! जिस कारण कि, तुझको ज्ञान नहीं है जिसके माहात्म्यसे तिर्यक् योनिको प्राप्त हुए भी शीघ्र ॥ ४७ ॥

अवाप शिवतां चैव पश्यतस्ते क्षणं तथा ॥
इति तत्परमाश्चर्यं रूपं तद्वचनं प्रिये ॥ ४८ ॥

शिवताको प्राप्त होकर तेरे सन्मुख दीखे, यही परम आश्चर्य है कि, तैंने कुछ न जाना ॥ ४८ ॥

श्रुत्वा व्याधो महाभागः प्रणनाम भुवि क्षणात् ॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि मुने त्वद्दर्शनादहम्॥४९

यह उनके वचन सुनकर महाभाग व्याधेने भूमिमें पडकर प्रणाम किया और कहा हे मुनिराज ! मैं आज आपके दर्शनसे धन्य और कृतकार्य हुआ ॥ ४९ ॥

योऽहं तव मुखांभोजनिःसृतं सुकथामृतम् ॥
पिबामि मुनिशार्दूल त्राहि मां भवसागरात्॥ ५० ॥

जो मैं तुम्हारे मुखकमलसे निकले हुए कथारूपी अमृतका पान करताहूँ । हे मुनिश्रेष्ठ ! संसारसागरमें मेरी रक्षा करो ५०

पापोऽहं मुनिहन्ताऽहं हिंसकोऽहं दुरासदः ॥
तारयेह महाभाग कथमेतादृशी गतिः ॥ ५१ ॥

मैं पापात्मा मुनिघाती हिंसक दुष्ट हूं। हे भगवन् ! इस प्रकार कुगतिसे कैसे तरूंगा ॥ ५१ ॥

भवेन्मे मुनिशार्दूल तद्वदस्व कृपान्वितः ॥
उवाच नारदस्तं वै ह्यत्रैव निवसत्विति ॥ ५२ ॥

हे मुनिराज ! मेरी ऐसी गति कैसे होगी सो आप कृपाकर कहिये ! नारदजीने उससे कहा तुम यहीं निवासकरो ॥५२॥

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवि पश्यतस्तस्य वै प्रिये ॥
व्याधोऽपि निवसंस्तत्र ययौ वै परमां गतिम् ५३॥

हे प्रिये ! ऐसा कहकर उसके देखतेही नारदजी अन्तर्धान हुए । व्याधा भी वहां निवास कर परमगतिको प्राप्त हुआ ५३ ॥

इति तत् क्षेत्रमाहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि ॥
न क्षमोऽस्मि प्रिये वक्तुं शृण्वतोऽपि परां गतिम् ५४॥

इसप्रकार इस क्षेत्रका माहात्म्य तो सैकडों वर्षमें भी मैं नहीं कह सकता । इसके सुननेसेही परमगति होती है ॥ ५४ ॥

तीर्थानि शृणु देवेशि गुह्यानि सुतरां प्रिये ॥ ५५ ॥

हे प्रिये ! अब इसके गुह्य (छिपे हुये) तीर्थ सुनो मैं तुमसे कहता हूं ॥ ५५ ॥

इति केदारमाहात्म्ये पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत
भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ईश्वर उवाच ।

दक्षिणस्यां शिवे देवि रेतःकुण्डमिति श्रुतम् ॥
यत्पयःपानमात्रेण शिव एव न संशयः ॥ १ ॥

शिवजी बोले, हे पार्वति ! दक्षिणकी ओर रेतःकुंड है । जिसके जलपानमात्रसे प्राणी निःसंदेह शिवरूप होता है ॥ १ ॥

येन चिह्नेन तत्तीर्थं जायते शिवदायकम् ॥
पारदं दृश्यते तत्र तज्जलं बुद्बुदायते ॥ २ ॥

जिस चिह्नसे वह तीर्थ शिवदायक होता है, उस जलमें देखनेसे बुद्बुदे उठने लगते हैं ॥ २ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण नरो याति परां गतिम् ॥
किं पुनर्देवदेवेशि तत्पाने नितरां शिवे ॥ ३ ॥
उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है । हे पार्वति ! फिर उसके पान करनेसे क्या कहैं ॥ ३ ॥

मन्दाकिन्यास्तु सुतटे तीर्थानि शृणु पार्वति ॥
तस्मादेव महातीर्थादधोदेशे शुभप्रदम् ॥ ४ ॥
मन्दाकिनीके किनारके तीर्थोंको हे पार्वति ! सुनो । उस महातीर्थके निम्नभागमें भी अनेक तीर्थ हैं ॥ ४ ॥

शिवकुण्डमितिख्यातं शिवलोकप्रदायकम् ॥
यत्रोपोष्य सप्तरात्रं प्राणान्वै संत्यजेद्बुधः ॥ ५ ॥
वहां शिवकुंड शिवलोकका देनेवाला है, जहां सात रात्रि व्रत करके जो कोई प्राणोंको त्यागन करे ॥ ५ ॥

शिवसायुज्यतामेति यतो धारा विनिःसृता ॥
तदर्ध भृगुतुंगं वै पापिनामपि मुक्तिदम् ॥ ६ ॥
वह शिवलोकको जाता है, जहांसे धारा निकलती है वहांसे आधा फल भृगुतुंगमें भी है,पापियोंको मुक्ति देनेवालाहै६

गोघ्नः कृतघ्नो विप्रघ्नो योऽपि विश्वासघातकः ॥
श्रीशिलायां तपेद्यस्तु भृगुतुंगान्महोन्नतात् ॥ ७ ॥
गोघाती, कृतघ्न, विप्रघाती, विश्वासघाती पवित्र होते हैं । श्रीशिलामें भृगुतुंग महोन्नत है ॥ ७ ॥

प्राणांस्त्यजति देवेशि स परब्रह्मतामियात् ॥
तस्मात्तीर्थादूर्ध्वभागे योजनद्वयसंमिते ॥ ८ ॥

जो यहां प्राण त्यागन करता है वह परब्रह्मताको प्राप्त होता है। उस तीर्थके ऊपर दो योजनपर ॥ ८ ॥

रक्तवर्णं जलं तत्र बुद्बुदाकारनिःसृतम् ॥
इदं जलं परं गोप्यं न वदेद्दुष्टजन्तुषु ॥ ९ ॥

लाल वर्णका जल बुद्बुदके आकारका निकलता है यह जल परमगुप्त है, पर दुष्टप्राणियोंको प्रकाश करने योग्य नहीं है ॥ ९ ॥

यस्य स्पर्शेन सर्वेऽपि धातवः स्वर्णतां प्रिये ॥
यान्ति लोहादयो देवि सत्यं सत्यं न संशयः॥ १०॥

जिसके स्पर्शसे सब धातु सुवर्ण हो जाती हैं। लोहादि सुवर्ण हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ १० ॥

इदं हिरण्यगर्भाख्यं तीर्थं परमदुर्लभम् ॥
यस्य दर्शनमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥ ११ ॥

यह परमदुर्लभ हिरण्यगर्भनामक तीर्थ है, जिसके दर्शनसे नर नारायण होता है ॥ ११ ॥

तस्मादुत्तरतो देवि स्फाटिकं लिङ्गमुत्तमम् ॥
यस्य वै पूजनात्सद्यः शिव एव न संशयः ॥ १२ ॥

हे देवि! उसके उत्तरमें स्फटिकका लिंग है जिसके पूजनसे मनुष्य तत्काल शिव होता है इसमें संदेह नहीं ॥ १२ ॥

तस्मात्सर्वपदे पूर्वं वह्नितीर्थमिति स्मृतम् ॥
तस्य चिह्नं प्रवक्ष्यामि गदतो मे शृणु प्रिये ॥ १३ ॥

उसके पूर्व वह्नितीर्थ है । हे प्रिये ! सुनो, उसका चिह्न कहता हूं ॥ १३ ॥

हिमान्तर्गलिते तद्वै जलं वह्निमयं प्रिये ॥
पूजनं तस्य कर्तव्यं घृताक्ताहुतिभिस्तथा ॥ १४ ॥

जो वह्निमय जल हिमके अन्तर्गलित होता है वहाँ घृतकी आहुतिसे उसका पूजन करना चाहिये ॥ १४ ॥

संतृप्तो जायते वह्निर्वरमिष्टं प्रयच्छति ॥
तत्र उत्तरतो देवि आश्चर्यं परमं शिवे ॥ १५ ॥

इससे अग्नि तृप्त होकर इष्ट वर देता है । हे शिवे ! उसके उत्तरमें परम आश्चर्य है ॥ १५ ॥

शैलाग्रशिखरात्तत्र जलं पतति भूतले ॥
तज्जलस्य कणा देवि सद्यो मुक्ता भवन्ति हि ॥ १६ ॥

वहाँ शैलके अग्रभागसे जल पतित होता है, उस जलके कणमात्रसे मोती होते हैं ॥ १६ ॥

तत्रैव भीमसेनेन पूजितोऽहं च मौक्तिकैः ॥
मुक्ताविद्रुमजालानां हर्म्याणां च परंपरा ॥ १७ ॥

वहाँ भीमसेनने मोतियोंसे मेरा पूजन किया था । वहाँ मोती मूंगोंके स्थानोंकी परंपरा है ॥ १७ ॥

तेषु हर्म्येषु देवेशि गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥
गायन्ति परमीशानं हर्षेण परिपूरिताः ॥ १८ ॥

हे देवि ! वहाँ गंधर्व अप्सरा प्रसन्न हो शिवजीको प्रसन्न करते जाते हैं और गीत, स्तोत्र गाते हैं ॥ १८ ॥

तत्र यान्ति महादेवि पुण्यात्मानो महाधियः ॥
ततः परं महापन्था यत्र गत्वा न शोचति ॥ १९ ॥

हे देवि ! वहाँ पुण्यात्माही गमन करते हैं, उसके उपरान्त महापन्थ है जहां जाकर मनुष्य शोच नहीं करता है ॥ १९ ॥

तस्मिन्महापथे देवि घृतपायसकर्दमाः ॥
स्वर्णभूमी रत्नमयी स्वर्णपक्ष्युपशोभिता ॥ २० ॥

हे देवि ! वहां घृत दूधकी कर्दम होती है, बडी रत्नोंकी जडी स्वर्णकी भूमि सोनेके पक्षियोंसे शोभित है ॥ २० ॥

वृक्षाः स्वर्णमयास्तत्र प्रवाललतिकावृताः ॥
अनेके च महागृध्राः पन्नगाशनतेजसः ॥ २१ ॥

यहां सोनेके वृक्ष मूँगोकी वेलसे युक्त हैं । अनेक महागृध्र गरुडकी समान तेजस्वी हैं ॥ २१ ॥

योजनायामविस्तारा महाव्यालाश्च सर्वशः ॥
सप्तप्राकारसंयुक्ते मम धाम्नि महेश्वरि ॥ २२ ॥

एक योजनके विस्तारवाले महाव्याल हे महेश्वरि ! सात प्राकारसे संयुक्त मेरे धाममें हैं ॥ २२ ॥

यत्र ब्रह्मादयो देवि मां हि सेवन्ति नित्यशः ॥
महाभैरवहस्तस्थदण्डेन कृतशासनाः ॥ २३ ॥

हे देवि ! जहां ब्रह्मादिक मेरा नित्य सेवन करते हैं, वहां दंडधारी महाभैरव शासन करते हैं ॥ २३ ॥

भूतवेतालप्रेताश्च कूष्माण्डा जृम्भकास्तथा ॥
नन्दीभृंग्यादयश्चैव क्रीडन्ति सुखसंवृताः ॥ २४ ॥

भूत, वेताल, प्रेत, कूष्मांड, जृम्भक, नन्दी; भृंगी आदि आनन्दसे क्रीडा करते हैं ॥ २४ ॥

अहं महापथे नित्यं संस्थितो मम वल्लभे ॥
अस्मात्स्थानात्प्रियतरं नास्ति देवेशि मे क्वचित् २५

हे प्रिये! मैं भी उस महापथमें नित्य क्रीडा करता हूं। उस स्थानसे अधिक मुझे और कोई प्रिय नहीं हैं॥ २५॥

यः कश्चिन्मानवो भक्त्या एवं वदति नित्यशः॥
महापथं गमिष्यामि प्राणांस्त्यक्ष्यामि तत्र वै॥२६॥

जो कोई मनुष्य भक्तिसे ऐसा नित्य कहते हैं मैं महापथ जाकर वहां प्राण त्यागूंगा॥ २६॥

सोऽपि मे देवदेवेशि प्रियात्प्रियतरोऽस्ति वै॥
किं पुनर्मानवो लोके सर्वसंगविवर्जितः॥ २७॥

हे देवि! वह भी मुझे नित्य प्यारा है और संगरहित मनुष्य की तो कौन कहै॥ २७॥

मान्यस्य हृदि च स्वीये गच्छेद्वै मम मन्दिरे॥
स्वर्गारोहगिरेर्मूर्ध्नि स्थानं मे परमं महत्॥ २८॥

जो हृदयसे भी मेरे मंदिरमें आता है वह प्रसन्न होता है। स्वर्गारोहपर्वतके ऊपर मेरा परमस्थान है॥ २८॥

अयं तीर्थमयः शैलो यत्राहं संस्थितः सदा॥
दर्शनादेव पापानि ब्रह्महत्यासमानि च॥ २९॥

यह तीर्थमय शैल है जहां सदा निवास करता हूँ। इसके दर्शनमात्रसे ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं॥ २९॥

नश्यन्ते किमु देवेशि पूजनात्स्पर्शनात्तथा॥
क्षीरगंगा तु या धारा मंदाकिन्यास्तु संगमे॥ ३०॥

फिर पूजन स्पर्शकी बात कौन कहे। जो क्षीरगंगाकी धारासे मन्दाकिनीका संगम हुआ है॥ ३०॥

शिवप्रदं महातीर्थं क्रौंचहर्तुः प्रकीर्तितम् ॥
यत्र स्नात्वा वरारोहे कैलासनिलये वसेत् ॥ ३१ ॥

वहां महातीर्थ कार्तिकेयका किया परमोत्तम है। हे सुमुखि! जहां स्नानसे वह प्राणी कैलासको जाता है ॥ ३१ ॥

क्षीरगंगा तु या धारा मंदाकिन्या सुसंगता ॥
ब्राह्मं वै परमं तीर्थं यत्र स्नात्वा गणो भवेत् ॥३२॥

जो क्षीरगंगाकी धारा मंदाकिनीमें मिलीहै। वह श्रेष्ठ ब्राह्म-तीर्थ है, जहां स्नान कर मेरा गण होता है ॥ ३२ ॥

तस्माद्दक्षिणतो देवि यज्जलं बुद्बुदायते ॥
सामुद्रं तज्जलं प्रोक्तं स्पर्शनाच्छिवदायकम् ॥ ३३॥

हे देवि ! उसके दक्षिणमें जो जल बुद्बुदके आकार है वह समुद्रका जल स्पर्शसेही सुखदायक है ॥ ३३ ॥

मत्तो यो वामभागेऽस्ति शैलः परमसुन्दरः ॥
पौरंदरः समाख्यातो यत्र मामिन्द्र ईश्वरि ॥ ३४ ॥

हमारे बाईं ओर जो परमश्रेष्ठ पर्वत है उसका नाम पौरं-दरपर्वत है। हे ईश्वरि ! जहां इन्द्रने ॥ ३४ ॥

समारराध पूर्वं वै स्वस्य च स्थितिहेतवे ॥
तत्रैव मे परं लिंगं दर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ ३५ ॥

अपनी स्थितिके निमित्त मेरा आराधन किया था। वहां मेरे लिंगके दर्शनसेही मुक्ति होती है ॥ ३५ ॥

मदालयाद्दण्डदशके हंसकुण्डमिति स्मृतम् ॥
यत्र ब्रह्मा महादेवि हंसो भूत्वा समाययौ ॥ ३६ ॥

मेरे स्थानसे दशदण्डपर हंसकुंड है। हे देवि ! जहां ब्रह्माजी हंसका रूप धारण कर आये थे ॥ ३६ ॥

रेतःपानं तु कृतवान् गणैः संघर्षितस्तथा ॥
तद्धंसकुंडमाख्यातं पितॄणां मुक्तिदायकम् ॥ ३७ ॥

वहांका जल पान किया और गणोंसे धर्षित हुए वह पितरोंकी मुक्तिका देनेवाला हंसकुंड है ॥ ३७ ॥

पितॄणां श्राद्धकर्तारो गच्छेयुः परमं पदम् ॥
नरकस्थापि पितरो जन्मजन्मसमुद्भवाः ॥ ३८ ॥

पितरोंका श्राद्ध करनेवाले परमपदको जाते हैं। जो जन्मजन्मके नरकमें स्थित पितर हैं ॥ ३८ ॥

त्रिशूलिनो महादेवाश्चन्द्रार्धकृतशेखराः ॥
वृषस्कंधस्थिताः सर्वे व्यालयज्ञोपवीतकाः ॥ ३९ ॥

वे त्रिशूलधारी महादेव, अर्धचन्द्रधारी, वृषपर चढे, व्यालका उपवीत धारण किये ॥ ३९ ॥

भस्मांगरागसहिताः क्रीडेयुर्वै मया सह ॥
इति तद्धंसकुंडस्य माहात्म्यं वरवर्णिनि ॥ ४० ॥

शरीरमें भस्म लगाये मेरे साथ क्रीडा करते हैं। हे प्रिये ! यह हंसकुंडका माहात्म्य है ॥ ४० ॥

यस्माज्जलमयी भूमिः पदन्याससुकम्पिता
केदारक्षेत्रमाख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ॥ ४१ ॥

जहांकी जलमय भूमि पादन्याससे कम्पित होती है। केदारक्षेत्र तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा केदारनाथं मां पीत्वा रेतोजलं मम ॥
शिवलिंगं प्रजायेत हृदि तस्य महेश्वरि ॥ ४२ ॥

मुझ केदारनाथका दर्शनकर और जलपान करनेसे हेमहेश्वरि ! उसके हृदयमें शिवलिंगकी प्राप्ति होती है ॥४२॥

यस्मिन्कस्मिन्नपि शिवे काले वै यत्र कुत्र वै ॥
मृतः शिवपुरे याति पापी चापि शुभस्तथा ॥४३॥

तौ जिस किसी समय जहां कहीं भी मृतक शिवपुरमें गमन करताहै, पापी वा शुभकारी कोई हो ॥ ४३ ॥

यत्र देशे तु यो मर्त्यः केदारेश्वरदर्शनम् ॥
इत्युद्दिश्य मृतो देवि शिवो भवति मानवः ॥ ४४ ॥

जिस देशमें जो मनुष्य केदारेश्वरका दर्शन करूंगा, ऐसे उद्देशसे मृत्युको प्राप्त होता है तौ शिव होता है ॥ ४४ ॥

शिवस्थानमिदं प्रोक्तं विष्णुस्थानमतः शुभम् ॥
भीमसेनशिला देवि पर्यंकं मम कीर्तितम् ॥ ४५ ॥

यह शिवस्थान विष्णुस्थानसे भी श्रेष्ठ कहा है । हे देवि ! भीमसेनकी शिला मेरा पर्यंक है ॥ ४५ ॥

त्रिगव्यूतौ मम स्थानाद्दक्षिणे शृणु तीर्थकम् ॥
गौरीतीर्थमिदं ख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४६ ॥

मेरे स्थानसे छः कोस जो तीर्थ है सो सुनो । यह गौरीतीर्थ सब सिद्धि देता है ॥ ४६ ॥

यत्र त्वया महेशानि मंदाकिन्यास्तटे पुरा ॥
ऋतुस्नानं कृतं तद्वै गौरीतीर्थमिति स्मृतम् ॥ ४७ ॥

हे प्रिये ! जहां तुमने मंदाकिनीके किनारे पहले ऋतुस्नान किया था वही यह गौरीतीर्थ कहाता है ॥ ४७ ॥

महासेनस्य उत्पत्त्यै विस्मृतं किं त्वयानघे ॥
तस्माच्चिह्नं प्रवक्ष्यामि येन तज्ज्ञायते शुभम् ॥४८॥

महासेन कार्तिकेयकी इच्छा करती हुई सो क्या स्मरण नहीं है ? उसके जाननेका चिह्न कहता हूं ॥ ४८ ॥

कटूष्णं तु जलं तत्र सिन्दूराभा तु मृत्तिका ॥
तत्स्थानं देवदेवेशि न त्यजामि कदाचन ॥ ४९ ॥

वहांका जल कटूष्ण है, मृत्तिका सिन्दूरवर्णकी है, मैं उस स्थानको कभी नहीं छोडता हूं ॥ ४९ ॥

तत्र गौरीश्वरत्वेन ख्यातोऽहं शिवलोकदः ॥
स्नानं करोति यस्तत्र मृत्तिकां शिरसा वहेत् ॥५०॥

वहां मैं गौरीश्वर नामसे विख्यात हूँ, जो यहां स्नान कर शिरपर मृत्तिका धारण करता है ॥ ५० ॥

स वै मम प्रियतरो यथा त्वं मम वल्लभा ॥
यत्र यद्वै कृतं कर्म तद्वै कोटिगुणं भवेत् ॥ ५१ ॥

सो मुझे तुम्हारी समान प्यारा होताहै । वहां जो कर्म किया जाय वह कोटिगुणा होता है ॥ ५१ ॥

तस्माद्दक्षिणतो देवि गोरक्षाश्रमरक्षकम् ॥
यत्र सिद्धो महादेवि गोरक्षो वसतेऽनिशम् ॥ ५२ ॥

हे देवि ! उसके दक्षिणमें गोरक्षाश्रम है । हे देवि ! जहां सिद्ध गोरक्षक रहता है ॥ ५२ ॥

तल्लिंगं तु प्रवक्ष्यामि शृणु पुण्यतमं स्थलम् ॥
महातप्तजलं तत्र वर्त्तते सर्वदैव हि ॥ ५३ ॥

उस पवित्र स्थानका चिह्न कहता हूं । वहां सदा महातप्त जल रहता है ॥ ५३ ॥

तत्र स्थित्वा सप्तरात्रं तपन्वै शिवमुत्तमम् ॥
सिद्धो भवति देवेशि यथा गोरक्ष उत्तमः ॥ ५४ ॥

वहां सात रात्रि रहकर शिवका तप करनेसे हे देविशि ! वह गोरक्षकी समान होता है ॥ ५४ ॥

तस्मिन्नेव महाशैले चतस्रो निम्नगाः स्मृताः ॥
देविका भद्रका शुभ्रा मातंगीति समाहृताः ॥५५ ॥

उस स्थानमें चार नदी हैं. देविका, भद्रका, शुभ्रा और मातंगी ५५

देविकायां नरः सप्तरात्रं मिथ्यादिवर्जितः ॥
जपन् षडक्षरं देवि पश्यते स्पर्शमौक्तिकम् ॥ ५६ ॥

हे देवि ! जो देविका नदीमें सात दिन मिथ्यादोषरहित होकर षडक्षर मंत्रका जप करता है वह स्पर्शमौक्तिकको देखता है ५६

यस्य स्पर्शाद्धातवस्तु स्वर्णतां यान्त्यसंशयम् ॥
तथान्यां तु महादेवि स्नात्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ५७॥

जिसके स्पर्शसे लोहादि धातु स्वर्ण हो जाती है हे महादेवि ! तथा प्राणी स्नान कर अन्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥

गौरीतीर्थादूर्ध्वभागे पर्वते सौम्यदिक्स्थिते ॥
चीरवासा भैरवस्तु क्षेत्रं रक्षति मामकम् ॥ ५८ ॥

गौरीतीर्थ ऊर्ध्वभागमें सौम्य दिशाकी ओर चीरवासा भैरव मेरे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ५८ ॥

तस्मै चीरादिकं दत्त्वा सर्वं पुण्यं लभेन्नरः ॥
अन्यथा तत्फलं सर्वं हरते भैरवः शिवः ॥ ५९ ॥

उनको चीरादि देकर मनुष्य सब पुण्य प्राप्त करता है । नहीं देनेसे भैरव उसका पुण्यफल हरण कर लेते हैं ॥ ५९ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपूज्य भैरवं विशेत् ॥
तस्मिन्नेव महाशैले काली वसति दुःखहा ॥ ६० ॥

इसकारण सब यत्नसे भैरवका पूजन करना चाहिये । उसी पर्वतमें सब दुःखहारिणी काली निवास करतीहै ॥ ६० ॥

तां नमस्कृत्य गच्छेत पर्यंके नामके शिवे ॥
गौरीतीर्थापरे भागे क्रोशे परमदुर्लभम् ॥ ६१ ॥

हे शिवे ! उनको प्रणाम करके मेरे पर्यंक नामक स्थानमें जाय जो दुर्लभ स्थान एक कोश गौरीतीर्थके परभागमें स्थित है ६१

वैनायकं तथा द्वारं संस्थित्य संस्थितः शिवे ॥
गणेशस्तावकः पुत्र अंगरागेण यः कृतः ॥ ६२ ॥

वहां वैनायकनाम द्वारहै वहां गणेश तुम्हारे पुत्र जो अंगरागसे उत्पन्न किया है ॥ ६२ ॥

स्थापितो द्वारि देवेशि त्वया च स्नाप्यमानया ॥
मया यस्य शिरश्छिन्नं पतितं शिवक्षेत्रके ॥ ६३ ॥

जिसको स्नानकी इच्छासे तुमने द्वारपर स्थापन किया था जिसका मैंने शिर छेदन कर शिवक्षेत्रमें गिरादिया था ॥ ६३ ॥

प्रसन्नेन मया देवि पुनः करिवरं शिरः ॥
संयोजितं तदंगे तु ततो गजमुखोऽभवत् ॥ ६४ ॥

और फिर प्रसन्न होकर मैंने हाथीका शिर उनके अंगमें लगा दिया जिससे वह गजवदन हुए ॥ ६४ ॥

संपूज्य तं गणेशं वै नाना नैवेद्यद्रव्यकैः ॥
गच्छेन्मम महास्थाने यत्र गत्वा शिवो भवेत् ॥ ६५ ॥

उन गणेशजीका अनेक नैवेद्य द्रव्योंसे पूजन कर मेरे स्थानको जाता है। जहां जाकर शिवरूप होता है ॥ ६५ ॥

कालिकेति समाख्याता नदी गंगांगसंभवा ॥
वासुकिप्रमुखा नागा यां हि सेवन्ति नित्यशः ६६ ॥

वहां, गंगासे मिलनेवाली कालिका नदी है, जिसको वासुकि आदि नाग सदा सेवन करते हैं ॥ ६६ ॥

शेषेश्वरो महादेवो यत्रास्ति हि सरोवरे ॥
उच्छलन्तिमहानागाभस्मीकुर्वन्ति तत्स्थलम् ६७॥

जहांके सरोवरमें शेषेश्वर शिव नित्य निवास करते हैं। महानाग उच्छलित होकर उस स्थलको भस्म करते हैं ॥ ६७ ॥

क्रुध्यन्ति तु यदा देवि नान्यथा ते महाविषाः ॥
कालिकातालुमूलेऽस्ति कथ्यंते तेन कालिकाः ६८॥

हे महादेवि! जब वे क्रुद्ध होते हैं, तबी महाविष होतेहैं और उनके तालुमूलमें कालिका देवी है इससे वे कालिका कहातेहैं ६८

मंदाकिन्यास्त्रिविक्रम्याः संगमोऽतीव पुण्यदः ॥
यत्र तिष्ठामि कालीशनाम्ना स्वस्थानदो ह्यलम् ६९॥

त्रिविक्रमी मंदाकिनीका संगम पवित्र पुण्यदायक स्थान है। मैं जिस स्थानमें कालीश्वर नामसे स्थित हूं ॥ ६९ ॥

इति ते कथितं देवि केदारेश्वरक्षेत्रकम् ॥
श्लोकार्द्धं श्लोकमेकं वा श्रुत्वोक्त्वा च लभेच्छिवम् ७०

हे देवि! यह तुमसे केदारेश्वर क्षेत्रका वर्णन किया। मनुष्य इसका एक वा आधा श्लोक सुन वा कहकर मुक्त होताहै॥ ७०॥

इति श्रीस्कांदे केदारखंडे केदारमाहात्म्ये भाषाटीकायां
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ यात्रानियमाध्यायः १.

सनत्कुमार उवाच ।

कथितो नियमो वासो यात्रायां शृणु नारद ॥
नियमेन कृता सापि श्रेयसे भूयसे भवेत् ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले, कि, हे नारद ! यात्रामें कहाहुआ नियम और निवास सुनो. नियमसे कीहुई यह यात्रा- बडे कल्याणके निमित्त होती है ॥ १ ॥

बुद्ध्यबुद्धिकृतानां तु पातकानां प्रशान्तये ॥
ऐहिकामुष्मिकार्थाय गच्छामि बदरीमिति ॥ २ ॥

बुद्धि वा अबुद्धिसे किये हुए पातकोंकी शान्तिके निमित्त तथा ऐहिक और पारलौकिककी सिद्धिके निमित्त बदरीनाराय- णको जाऊंगा इस प्रकार ॥ २ ॥

संकल्प्य तर्पयित्वा च नत्वा गुर्वादिकांस्तथा ॥
ध्यात्वा नारायणं देवं निर्गच्छेदात्मनःस्थलात् ॥३॥

संकल्प तर्पण तथा गुरु आदिकोंको प्रणाम करके तथा बदरीनारायणका ध्यान करके अपने स्थानसे चले । नान्दीमुख श्राद्ध तथा स्वस्तिवाचन करके चले ॥ ३ ॥

स्तेयं हिंसां मदाद्यं च परान्नादिप्रतिग्रहम् ॥
मुंचन्पथि समागच्छेद्बदरीं यत्नतो गृही ॥ ४ ॥

स्तेय, (चोरी) हिंसा मदादि और पराये अन्नका त्याग करके गृहस्थीको बदरीनारायणकी यात्रा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अनिषिद्धान्नपानादिपुष्टोऽन्योऽपि समाव्रजेत् ॥
आगच्छन्मृत्युमाप्नोति क्षेत्रमृत्युफलं लभेत् ॥ ५

शुद्धान्नपानादिसे पुष्ट हुआ कोई भी दर्शनको जाय और फिर आकर अपने स्थानपर भी प्राण त्यागनेसे क्षेत्रमें मरनेसे जो फल होता है उसी फलकी प्राप्ति होती है ॥ ५ ॥

कण्वाश्रमादिमार्गस्य तीर्थेष्वपि समाप्लुतः ॥
ज्योतिर्धामगतं दिव्यं नृसिंहं भक्तितो नमेत् ॥ ६ ॥

कण्वऋषिके आश्रमके मार्गमें स्थित तीर्थोंमें स्नान करके ज्योतिर्धाममें प्राप्त हुए दिव्य नृसिंहजीको भक्तिसे नमस्कार करे ६

स्नात्वा विष्णोः प्रयागेऽस्मिन्योगीश्वरमुपास्य च ॥
शेषं प्रणम्य सक्षेत्रपालं च सुसमाहितः ॥ ७ ॥

इस विष्णुप्रयागमें स्नान और योगीश्वरकी उपासना करके समाहित चित्तसे शेषजी और क्षेत्रपालको प्रणाम करके ॥ ७ ॥

यात्रामुपोष्य वै होतृस्थाने वैखानसे पुनः ॥
प्रातः स्नात्वा महातीर्थे कौबेरीं तां शिलां व्रजेत् ॥ ८ ॥

यात्रा और व्रत करके फिर होतृस्थान वैखानस महातीर्थमें प्रातःकाल स्नान करके कुबेरकी शिलाको जाय ॥ ८ ॥

तत्र दत्त्वा धनं शक्त्या ब्राह्मणेभ्यो मुदान्वितः ॥
परिक्रम्य शिलां गच्छेद्गङ्गामृष्यभिदामपि ॥ ९ ॥

वहां प्रसन्न होकर शक्त्यनुसार ब्राह्मणोंको धन दे और शिलाकी परिक्रमा करके ऋषिगंगाको जाय ॥ ९ ॥

---

१ कण्वाश्रम--नन्दप्रयागको कहते हैं, यहां कण्वमुनिका आश्रम और यहांसे बारह योजनतक बदरिकाश्रमकी भूमिहै ।

२ ज्योतिर्धाम--ज्योतिर्मठ, जोशीमठ है, यहां भगवान् नृसिंह और दुर्गाका सिद्धपीठहै ।

तत्र स्नात्वा नवीने द्वे वस्त्रे धृत्वा शुचिर्भवेत् ॥
दत्त्वा पुरातने वस्त्रे याचकेभ्यो मुदान्वितः ॥ १० ॥

उस स्थानमें स्नान करके दो नवीन वस्त्रोंको धारण करके शुद्ध होवे और प्रसन्न होकर पुराने वस्त्रोंको याचकोंके निमित्त देवै १०

ततस्तु बदरीनाथभवनं प्रणमन्व्रजेत् ॥
आचम्य कूर्मधारायां भक्त्या परमया पुनः ॥ ११ ॥

फिर भक्तिपूर्वक कूर्मधारामें आचमन करके प्रणाम करता हुआ बदरीनारायणके मन्दिरको जाय ॥ ११ ॥

नत्त्वा जयं च विजयं प्रविशेद्देवमन्दिरम् ॥
नारायण दयासिंधो प्रसीदेति मुहुर्वदन् ॥ १२ ॥

और जय विजयको प्रणाम करके देवमन्दिरमें प्रवेश करे हे नारायण दयासिंधो ! प्रसन्न होओ । इस प्रकार बारंबार कहता हुआ ॥ १२ ॥

परिक्रम्य प्रणम्याथ दद्यादस्मै ह्युपायनम् ॥
नारायणं नरं दृष्ट्वा कुबेरं कमलामपि ॥ १३ ॥

परिक्रमा तथा प्रणाम करके उनके निमित्त भेंटदे । नर नारायण और कुबेर तथा कमलाको देखकर ॥ १३ ॥

देवतान्तरमानम्य वह्नितीर्थे समाप्लुतः ॥
कारयेच्च बहिः क्षौरं शिलाभ्यो मौनमाश्रितः ॥ १४ ॥

तथा और देवताओंको प्रणाम करके वह्नितीर्थमें स्नान करे, शिलाओंके बाहर मौनधारण करके क्षौरकर्म करावे ॥ १४ ॥

स्नायादलकनन्दायां बौधायनविधानतः ॥
उपवासं ततः कुर्याद्यजमानो जनार्दनम् ॥ १५ ॥

बौधायनऋषिकी कहीहुई विधिके अनुसार अलकनन्दा नदीमें स्नान करै। फिर जनार्दन भगवान्‌को भजता हुआ उपवास करे ॥ १५ ॥

प्रातरावश्यकं कृत्वा दृष्ट्वा नारायणं प्रभुम् ॥
प्रतर्प्य पितृदेवादीञ्श्राद्धे विधिवदाचरेत् ॥ १६ ॥

प्रातःकाल आवश्यक कार्य करके और विभु नारायणको देखकर पितर और देवताओंका तर्पण करके श्राद्धकी विधिके समान आचरण करे ॥ १६ ॥

दत्त्वा ब्रह्मकपालेऽस्मिन् पिण्डं पुत्रोऽथवाऽपरः ॥
नाम्ना यस्य स वै ब्रह्मलोके याति न संशयः ॥१७॥

और पुत्र ब्रह्मकपालमें पिंडदान करे वह पुत्र जिसके नामसे पिण्ड दे उसका पिता ब्रह्मलोकको जाताहै इसमें संदेह नहीं १७

दद्याच्च बदरीवासिजनायैव स्वशक्तितः ॥
वस्त्रधान्यधनादीनि भुंजीताथ तदुक्तितः ॥ १८ ॥

बदरीनारायणवासी मनुष्योंको अपनी शक्तिके अनुसार वस्त्र, धन, धान्यादि दे तथा भोजन करावे ॥ १८ ॥

तीर्थान्तराणि चान्येषु दिवसेषु समाहितः ॥
उपासीत समर्थश्चेन्नो चेत्तीर्थं समाश्रयेत् ॥ १९ ॥

और तीर्थोंमें और दिनोंमें समाहित चित्तसे यदि समर्थ हो तो व्रत करे या तौ तीर्थकाही आश्रय करे ॥ १९ ॥

नारदीयसमं तीर्थं त्रैलोक्ये न भवेत्क्षितौ ॥
तत्र स्नात्वा भवेद्यस्मात्सर्वतीर्थसमाप्लुतः ॥ २० ॥

नारदीयतीर्थके समान त्रिलोकीमें मैंने और तीर्थ नहीं देखा वहाँ स्नान करके मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नान करलेता है ॥ २० ॥

अनन्यचेतसा यश्च नारायणमनामयम् ॥
भजते भजनीयं किं ह्यपरं तस्य विद्यते ॥ २१ ॥

अनन्य चित्तसे अनामय अर्थात् सदा आनन्दस्वरूप भगवान्‌को जो भजताहै उसको इस संसारमें क्या नहीं मिलताहै ॥ २१ ॥

गच्छन्निजगृहं पश्चान्मार्गार्थादधिकं धनम् ॥
अर्पयित्वा व्रजेच्छ्रीमद्बदरीनायकाय च ॥ २२ ॥

फिर अपने घरको मार्गके व्ययसे अधिक धनको श्रीमान् बदरीनारायणके अर्पण करके जाय ॥ २२ ॥

क्षीरान्नधूपदीपादि दत्तं सर्वमनन्तकम् ॥
क्षेत्रेऽस्मिन्नारदान्यत्र दत्तमन्ते क्षयं व्रजेत् ॥ २३ ॥

क्षीर, अन्न, धूपादि सर्व पदार्थ दियेहुए अनन्त फलको देते हैं। हे नारद ! इस क्षेत्रसे अतिरिक्त और क्षेत्रोंमें देनेका फल एक समय नाश हो जाता है ॥ २३ ॥

दृढज्ञानेन भक्त्या वा परया यो न पश्यति ॥
नारायणेतरं तस्य नियमो नोच्यते मया ॥ २४ ॥

जो दृढ ज्ञान वा भक्तिसे नारायणमें प्रेम नहीं करता है उसके निमित्त यह नियम नहीं है ॥ २४ ॥

आगच्छन्बदरीं यस्तु कृतकृत्यत्वमाप्नुयात् ॥
अनमंश्च हरिं देवं वंचितोऽत्र कलौ युगे ॥ २५ ॥

यह जो बद्रिकाश्रममें आता है वह कृतकृत्यताको प्राप्त होत

है और जो बदरीनारायणको नमस्कार नहीं करता वह इस कलियुगमें वंचित है ॥ २५ ॥

बदरीनाथमानम्य तन्नामोच्चैरुदीरयन् ॥
सर्वधर्मविहीनोऽपि धन्य एव वसन्निह ॥ २६ ॥

बदरीनारायणको प्रणाम करके उनके नामको ऊंचे स्वरसे उच्चारण करनेवाला सब धर्मोंसे विहीन पुरुष भी तहाँ रहता हुआ धन्य है ॥ २६ ॥

श्रीविष्णोर्नित्यसान्निध्यं यद्गेहे पुस्तकं त्विदम् ॥
दुःस्वप्नो नश्यते शीघ्रं रोगी मुच्येत वै गदात् ॥२७॥

जिस घरमें यह पुस्तक स्थित रहतीहै वहाँ नित्य श्रीविष्णु रहते हैं । उस मनुष्यके दुःस्वप्न नष्ट हो जाते हैं रोगी रोगसे शीघ्र छूट जाता है ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गतकेदारखंडे पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकायां यात्रानियमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रार्थना ।

वन्देश्रीनारसिंहं गरुडसुरमुनिक्रोडकेदारगंगा-
मार्कण्डेयाग्नितीर्थद्रविणदभगवत्पाददुर्गागणेशान् ॥
घण्टाकर्णोद्धवश्रीनरनगबदरीनाथनारायणाख्यं
ब्रह्मप्रह्लादयोगीश्वरपदकमले श्रीनृसिंहांश्च भक्त्या ॥ १ ॥

बदरीनाथ विश्वात्मन् विघ्नान्नाशय मे प्रभो ॥
भवेत्क्षेत्राधिवासेऽस्मिंस्तव पादाम्बुजार्चनम् ॥ २ ॥

श्रीबद्रीनारायणमाहात्म्य—भाषाटीका सहित—अनेक प्रकारके छोटे बडे साइजके ।) से १।) रु० तक के मौजूद हैं ।

पुस्तकमिलनेका ठिकाना—
पं० महेशानन्द शर्मा,
नन्दप्रयाग जि०—गढवाल.

श्रीभगवान् बदरीविशालका रंगीन- दर्शनीय "चित्र".

पाठक! लीजिये भगवान् बद्रीविशालका अतिमनोहर चित्र है। अपने रहनेके कमरेमें सुन्दर कांचकी चौखटपर टांग दीजिये फिर तो दर्शन कर औरोंको दर्शन कराय कृतार्थ हूजिये. मूल्य ।) आना मात्र.

नकसा श्रीबद्रिकाश्रमका.

यह नकसा फर्जिया नहीं वरन् स्केलका है, जिसमें हरिद्वारसे केदार बद्री होतेहुए काठगोदाम रेलवे मिलने तकके समस्त तीर्थ गङ्गायें चट्टी २ और जिलाभरके प्रसिद्ध २ स्थानमय हिमालयोंके सब पृथक् २ दिखाये गये हैं. बढिया कागजपर बडे आकारवालाहै. मूल्य २ आने.

श्रीबद्रीविशालकी पुरीमें एक महात्मासे प्राप्त "सिद्ध यन्त्र"

तन्त्रशास्त्र एक प्रत्यक्ष शास्त्र है जिसके आश्चर्यभरे लटके अबतक देखे जाते हैं। यह यन्त्र ठगनेके लिये नहीं है क्रियासे धारण करो इसमें भारी २ सिद्धि हैं। वंध्या स्त्रीके पुत्र उत्पन्न होगा। कठिन रोगी रोगसे छुटकारा पावेगा । मृगी और उन्माद भुतबाधा इससे अलग भागते हैं. किसी स्त्रीके बच्चे पैदा होकर मरजाते हों उसको अवश्य इस यन्त्रको धारण करना चाहिये। छोटे बालकोंको नजर भूतबाधा और अनेक बीमारी हो

हैं उनके गलेमें चाँदी आदिके यन्त्रपर अवश्य सर्वदा रखनेसे भगवान् अवश्य रक्षा करते हैं विश्वास कीजिये । हनुमानूजीके लिये रोट १।) रु०

दन्तमंजन चूर्ण.

लीजिये तिब्बतके कैलासोंकी प्रत्यक्ष गुणकारी महौषधि है। हिलतेहुए दांत दृढ होते हैं। मुखसे खून गिरना, मसूढोंका सूजन, कीडा लगना, घिसजाना, खुजलाना और पीब आदिका गिरना एकबारही आराम होता है. इस अमूल्य औषधिके रहते भी आप दांतोंकी रक्षा न करें तो प्रारब्ध बलवान् है मूल्य ८ आने.

कामदेववटिका.

प्रत्यक्ष फल अजमाइये ! ताजी २ कैलासी दिव्य २ गुणधारनेवाली बूँटियोंका महद्गुण देखिये । सब प्रकारके धातुओंके रोगको एकबारही हटाकर मनुष्यको पूर्ण बल और अवस्थाको स्थापन करती है। आपहीके मुखसे प्रशंसा सुना चाहते हैं, हम विशेष क्या लिखें ! मूल्य १६ गोलीका १) रु०

उपरोक्त वस्तुओंके मिलनेका ठिकाना—

पण्डित-महेशानन्द शर्म्मा,

श्रीबद्रीनाथभक्तिरसामृतकार्यालय,

नन्दप्रयाग (गढवाल)

चित्रावली।

प्रिय तीर्थप्रेमी सद्गृहस्थ गण ! लीजिये आपहीके प्रेम, तथा भक्तिके कारण हमने इन दिव्य दर्शनीय ४ चित्रोंका बडा-ही योग्य समावेश कियाहै। इन चित्रोंको चित्रकारने बडा ही मनोहर बनाया तथा हमने भी उनकी दर्शनीय छटाओंको अनेक भाँतिके दिव्यरंगोंसे रंजित करके दर्शकोंके अंतःकरण व हृदयपटलपर स्थान देने योग्य चित्रोंका एकही पुस्तकनुमा संग्रहकर दिया (१) चित्र हारिद्वारमें श्रीगंगाभागीरथीजीका (२) चित्र देवप्रयागमें भवभयभंजन श्रीरामचन्द्रजीका (३) श्रीभूतभावन भोला श्रीकेदारनाथजीका (४) श्रीभक्तवत्सलभगवान्‌बद्रीविशालजीका है बडे २ साइजके चित्रहैं मू० ॥)

पुस्तक मिलनेका पता—
पं० महेशानन्द शर्म्मा,
भक्तिरसामृतकार्य्यालय, नन्दप्रयाग—बद्रीनाथ.

॥ श्रीः ॥

श्रीसौम्यवाराणसीमाहात्म्य.

भाषाटीकासहित ।

जिसको

श्रीबद्रीनारायण भक्तिरसामृत कार्य्या-
लय नन्दप्रयाग गढवालने

मुंबईमें

PRINTED AT THE KHEMRAJ SHRI KRISHNADAS SHRI
VENKATESHWAR STEAM PRESS, 7TH KHETWADI
KHAMBATTA LINE, BOMBAY.

मुद्रित कराय प्रकाशित किया.

संवत् १९६८, शके १८३३.

"श्रीवेङ्कटेश्वरसमाचार" लिखता है—

पं० महेशानंद शर्माका शुद्ध शिलाजीत दर १॥) तोलेका हमेसा हमारे कारखानेमें इस्तेमाल होताहै जिसके प्रत्यक्ष गुणोंके लिये हम प्रशंसा करते हैं धातुसम्बन्धि रोगों के लिये बहुत फायदेमन्द है।

सम्पादक—
"श्रीवेंकटेश्वरसमाचार"

श्रीगंगायै नमः ।
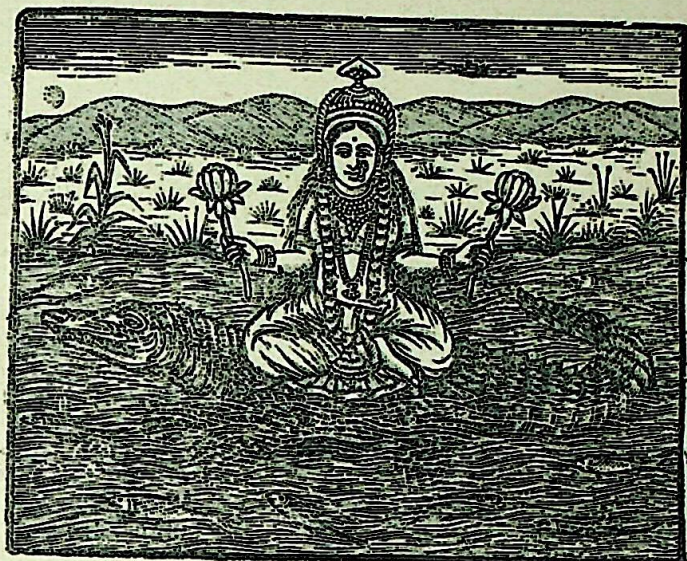
श्रीकेदारखंड ।

२०६ अध्याय

इस ग्रन्थमें श्रीगंगोत्तरी बद्रीकेदार आदिक समग्र कैलासके असंख्य तीर्थोंका प्राचीन इतिहास, उनका माहात्म्य, पाण्डवादिक कैलासविहारी राजाओंकी कथा, यात्राविधान, कैलासके तत्त्व, उत्तराखंड हरिद्वारसे कैलासके रत्नस्तम्भ पर्य्यंतका विचित्र रहस्य तीर्थप्रेमियोंके पढने योग्य प्राचीन व्यासदेव कृत मूल भाषाका मू० ७) रु० केवल भाषा ३॥) रु० बहुत भारी ग्रन्थ है ।

मिलनेका पता–
भक्तिरसामृत कार्य्यालय नंदप्रयाग
बदरीनाथ.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ गंगोत्तरीमाहात्म्यम् ।

तथा

कैलासमाहात्म्यम् ।

ऋषय ऊचुः ।

सूत सर्वपुराणानां वक्ता त्वं हि महाशय ॥
शप्ताञ्श्रुत्वा तु निर्मुक्तान्कोटिशो ब्रह्मराक्षसान् ॥ १ ॥
गङ्गोत्पत्तिं विशेषेण तथा राज्ञां महान्वयम् ॥
तीर्थानां चैव माहात्म्यं किमपृच्छत्पुनर्मुनिः ॥ २ ॥

महर्षिमण्डल बोला ।

हे महाशय सूतजी महाराज ! आप समस्त पुराणोंके वक्ता, शापको प्राप्त हुये ब्रह्मराक्षसोंकी मुक्तिको सुनकर, तथा गंगोत्पत्ति व बडे२ राजाओंके वंशका वर्णन सुनकर अथ च तीर्थोंके माहात्म्यका श्रवण करनेके अनन्तर महामुनि नारदजी महाराजने फिर क्या प्रश्न किया ? ॥ १ ॥ २ ॥

सूत उवाच ।

श्रुत्वा कैलासमाहात्म्यं संक्षेपेण पुनर्द्विजाः ॥
विशेषतः प्रष्टुकामः स्कंदं प्रोवाच नारदः ॥ ३ ॥

सूतजी बोले हे ब्राह्मणो ! संक्षेपसे कैलासपर्वतके माहात्म्यको सुनकर सविस्तर श्रवण करनेकी कामनासे नारदजीने स्वामिकार्त्तिकेयसे पूँछा ॥ ३ ॥

नारद उवाच ।

कृष्णवर्त्मज देवेश जगज्जनकसेवक ॥
निर्गतं त्वन्मुखाम्भोजात्पिबतो वचनामृतम् ॥
तृप्तिर्न जायते स्वामिन्पिपासा वर्द्धतेऽधुना ॥४॥
क्षेत्राणां सुबहूनां च वैभवः कथितः श्रुतः ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि सुसारं हिमवद्गिरौ ॥ ५ ॥

हे कुमार ! आप जगत्के पैदा करनेवाले ईश्वरके सेवक हैं आपके मुखकमलसे उत्पन्न हुए अमृतरूपी वचनोंको पान करते२ मेरी तृप्ति नहीं होती, बरन् सम्प्रति अधिक २ कथामृत श्रवण करनेकी इच्छा वृद्धिंगत होती है। आपने बहुतसे क्षेत्रोंका माहात्म्य (श्रीकेदारखण्डग्रथमें वर्णन हुआ है) जो वर्णन कियाहैं उसको मैंने सुना, अब मैं हिमालयके माहात्म्यको विधिवत् सुना चाहता हूं ॥ ४ ॥ ५ ॥

तथा कथितक्षेत्रेभ्योऽधिकं क्षेत्रं वदस्व मे ॥
यन्न कस्मैचिदाख्यातं कलौ मुक्तिप्रदायकम् ॥ ६ ॥
न यज्ञैर्न तपोभिश्च नैवोपोषणकव्रतैः ॥
महादानैर्न चायासैः पुण्यं यद्भवति प्रभो ॥ ७ ॥

एवं च जितने क्षेत्रोंका आपने बर्णन किया है उनसे अधिक जो क्षेत्र हो उसेभी मेरे प्रति कहो. जो कलियुगमें मुक्तिका देनेवाला जो अबतक किसीको भी न कहा हो. हे प्रभो ! क्या यज्ञ, क्या तप, क्या उपवास और बडे २ दान, बडे २ परिश्रम इनसे जो पुण्य होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

स्वल्पायासेन मुक्तिश्च सर्वैश्वर्यं भवेत्पुनः ॥
रहस्यातिरहस्यं च तत्क्षेत्रं वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

वोही सब पुण्य तथा भुक्ति, मुक्ति को बिना परिश्रमही देने-वाला तीर्थ हमसे कहो ॥ ८ ॥

स्कन्द उवाच ।

अस्ति गुह्यतमं क्षेत्रं सारात्सारतरं परम् ॥
परं गोप्यं परं तत्त्वं तुषाराढ्यशिलोच्चये ॥ ९ ॥
सर्वतीर्थमयं सर्वदेवजुष्टं सुपुण्यदम् ॥
यत्र भागीरथी पुण्या गंगा चोत्तरवाहिनी ॥ १० ॥

स्कन्दजी बोले, एक अत्यन्त गोपनीय क्षेत्रसारका भी सार और परमतत्त्वरूप हिमालयके ऊपर है, उसमें सब ही ती-र्थ सबही देवता निवास करतेहैं; अतएव वह अधिक पुण्यका देनेवाला है, उस स्थानमें परमपवित्र भागीरथी गंगाजी उत्तर-वाहिनी हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

सौम्यकाशीति विख्याता गिरौ वै वारणावते ॥
असी च वरुणा चैव द्वे नद्यौ पुण्यगोचरे ॥ ११ ॥
यत्र ब्रह्मा च विष्णुश्च महेशश्चेति ते त्रयः ॥
नित्यं संनिहिता यत्र मुक्तिक्षेत्रे तथोत्तरे ॥ १२ ॥

वारणावत पर्वतके ऊपर वह स्थान सौम्य वाराणसीके नामसे ख्यात है, वहां असी और वरुणा भी उपस्थित हैं. उसी पवि-त्र क्षेत्रमें ब्रह्मा विष्णु और महादेवजी तीनोंही देवता नित्य निवास करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

यत्रर्षीणां च स्थानानि आश्रमाश्च तथा शुभाः ॥
यत्र मारकतीं भासं बिभर्त्येव सदाशिवः ॥ १३ ॥
निक्षिप्ता यत्र पूर्वं हि संगरे देवताऽसुरैः ॥
अद्यापि दृश्यते तत्र शक्तिर्धातुमयी शुभा ॥ १४ ॥

वहां अनेक ऋषियोंके स्थान और अनेक तपोभूमि हैं वहां मरकतमणिके सदृश आभावाले शिवलिंग विराजमान हैं देवता और दैत्योंका जब संग्राम हुआथा, तब उन्होंने शक्ति फेंकीथी वह शक्ति अबतक वहां विराजमानहै १३॥१४

जमदग्निसुतो यत्र तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं सावधानोऽवधारय॥ १५ ॥
यत्र पुण्यानि तीर्थानि सर्वकामप्रदानि हि ॥
येषां संदर्शनादेव न च भूयोऽभिजायते ॥ १६ ॥

एवं च जिस क्षेत्रमें जमदग्निके पुत्र परशुरामजीने घोर तपका आचरण किया था अब आप उसीक्षेत्रका माहात्म्य सावधान होकर श्रवण करो । वहां बहुतसे ऐसे पवित्र तीर्थहैं जो सबही मनोरथोंको पूर्ण करतेहैं उनके दर्शन मात्रहीसे मनुष्यका फिर संसारविषे जन्म नहीं होता ॥ १५ ॥ १६ ॥

इयमुत्तरकाशी हि प्राणिनां मुक्तिदायिनी ॥
धन्या लोके महाभाग कलौ येषामिह स्थितिः॥१७॥
यत्र सर्वांशभावेन वसन्ते सर्वदेवताः ॥ १८ ॥

यह उत्तरकाशी प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली है. हेमहाभाग कलियुगमें उन्हीं व्यक्तियोंको धन्य है जो उत्तरकाशीमें निवास करते हैं । इस महान् तीर्थमें अपने २सर्व अंशोंसे सम्पूर्ण देवतागण निवास करते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

नारद उवाच ।

अतिपुण्यतमं स्थानं पापिनामपि मुक्तिदम् ॥
हिमालयतटे पुण्ये प्रोक्तं यद्वै त्वयाऽनघ॥ १९ ॥

तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं देव विस्तरतो वद ॥
कथं काशीति संजाता पुरा देवपुरोपमा ॥ २० ॥

श्रीनारदजी बोले। हे निष्पापमूर्ति ! हिमालयके तटपर अत्यन्त पवित्र अतएव पापियोंकोभी मुक्तिप्रदान करनेवाला जो स्थान आपने कीर्त्तन कियाहै हे देव ! उस क्षेत्रके माहात्म्यको आप विस्तारपूर्वक वर्णन करिये । तथा काशी देवपुरके समान कैसे हुई ? ॥ १९ ॥ २० ॥

केन केन तपस्तप्तं के के पुण्यतमाश्रमाः ॥
कथं परशुरामेण तपस्तप्तं हिमाचले ॥ २१ ॥
महाकाल्याः कथं देव पतिता शक्तिरुत्तमा ॥
कुत्र मारकतं लिंगं श्रीशिवस्य परात्मनः ॥ २२ ॥

उस स्थानमें किस २ महात्माने तप किया तथा वहां कौन २ से पवित्र आश्रम हैं ? एवं च हिमालयके ऊपर परशुरामजीने किस प्रकार तपस्याका अनुष्ठान किया ? अथ च हे देव ! महाकालीकी उत्तमशक्ति किस प्रकार निपतित हुई थी ? और मरकतमणिके सदृश प्रज्वलित शिवलिंग कहांपर है ? ॥ २१ ॥ २२ ॥

एतत्सर्वं विस्तरेण पुण्यान्यायतनानिच ॥
ब्रूहि स्कन्द विशेषेण माहात्म्यं वारणावतः ॥ २३ ॥
धन्योऽस्मि नाथ भगवन्यच्छृणोमि मुखाच्युतम् ॥
वाक्पीयूषमिदं पुण्यं तृप्तिर्मे न हि जायते ॥ २४ ॥
त्वत्तः श्रुत्वा परं ज्ञानं सिद्धा मुक्तिं समाययुः ॥ २५ ॥

यह सब पवित्र आश्रम और वारणावतका माहात्म्य हमारे प्रति विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। हे भगवन् ! मुझे धन्य है जो मैं

आपके मुखकमलसे निकले हुए वाक्यामृतका पानकर रहाहूं और मेरी तृप्ति नहीं होती ॥ २३ ॥ २४ ॥ आपहीके सकाशसे परमज्ञानका श्रवण करके सिद्धोंको मुक्तिका लाभ हुआ था२५

स्कन्द उवाच ।

शृणु नारद वृत्तांतं पापघ्नं सर्वकामदम् ॥
यथोत्तरस्थिता काशी जातेयं मुक्तिदा नृणाम् ॥२६॥
वक्ष्ये तद्विस्तरेणाहं यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥
शप्तां श्रुत्वा पुरा काशीं सर्वे देवाःसवासवाः॥२७॥

स्कन्द बोले हे नारद ! पापोंके विनाश करनेवाले और समस्त कामनाओंके देनेवाले वृत्तान्तका श्रवण करो, जिस प्रकार यह उत्तरकाशी मनुष्योंको मोक्ष देनेवाली हुई है वही मैं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं जिसका श्रवण करनेसे अमृतत्व-लाभ होता है । प्रथम जब इन्द्रादिदेवताओंने काशीको शाप लगा सुना ॥ २६ ॥ २७ ॥

कलावंतर्हिता काशी भविष्यति इति स्फुटम् ॥
मुनयश्च महाभागाः संत्रस्ता मुक्तिलालसाः॥२८ ॥
उमेशं शरणं जग्मुर्हिमवंतं नगेश्वरम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णा सभा यत्र विराजते ॥ २९ ॥

और उन्होंने यह निश्चय किया कि, कलियुगमें काशी अन्तर्हित हो जायगी तब तो मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मुनिगण भयभीत होने लगे, और हिमालय पर्वतके ऊपर श्री महादेवजीके शरणमें गये, उस स्थानमें सौ योजन अर्थात् चार-सौ कोश विस्तृत सभा विराजमान है ॥ २८ ॥ २९ ॥

प्रमथैः सेव्यमाना च नंद्यादिभिरनुष्टुता ॥
सर्वकामफलोपेता देवकिन्नरसेविता ॥ ३० ॥
अप्सरोभिर्गीयमाना पुण्यकृद्भिः सुगोचरा ॥
यत्रास्ते भगवाञ्छंभुः पार्वत्या सहितः प्रभुः॥३१॥

देवसभाकी प्रमथआदि (महादेवजी के गण) और नन्दी आदि स्तुति करते हैं समस्त कामनाओंके फलकी वहां प्राप्ति होती है देवता और किन्नर उसकी सेवा करते हैं, वहां अप्सराओंके गण गान करते हैं । पुण्यात्मा गणही उसका दर्शन करते हैं । पार्वती सहित शिवजी उसी स्थानमें विराजमान रहतेहैं॥ ३०॥ ३१॥

यत्र सर्वे महानागा वासुक्याद्याः प्रतिष्ठिताः ॥
चरणौ सेवितुं शंभोर्भूषणत्वमुपागताः ॥ ३२ ॥
जटाजूटतटाद्यत्र जाह्नवी निर्गता शुभा ॥
भगीरथनृपाराध्या तच्चक्रपरिगोचरा ॥३३॥

वासुकि आदि सम्पूर्ण नाग महादेवजीके चरणोंकी सेवा करनेको उपस्थित हैं तथा उनके आभूषण बने हैं । इसी स्थानमें श्रीमहादेवजीके जटाजूटसे श्रीगंगाजीकी शुभधारा निर्गत हुई है । राजा भगीरथने उनकी आराधना की थी अतएव उसकी चक्ररेखाके मध्यमें वह धारा बहती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

तत्र नत्वा महेशानं दृष्ट्वा देवमुमापतिम् ॥
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः सर्वभूतविमुक्तये ॥ ३४ ॥

वहांही उमापति महादेवजीके दर्शनकरके समस्त प्राणियोंकी मुक्तिके लिये शुभ वाणियोंसे उनको संतुष्ट किया था ॥ ३४ ॥

ऋषय ऊचुः ।

शम्भवे विभवे तुभ्यं व्यापकाय परात्मने ॥
भव्याय भव्यरूपाय विरूपाय निरात्मने ॥ ३५ ॥
निरञ्जनाय शुद्धाय ज्ञानरत्नप्रदायिने ॥
नमो देवाधिदेवाय देवसेव्याय ते नमः ॥ ३६ ॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे ॥
सर्वशक्तिस्वरूपाय निखिलेशाय ते नमः ॥ ३७ ॥
पार्वतीपतये तुभ्यं निराभासाय ते नमः ॥
निरध्यासाय सूक्ष्माय सूक्ष्मात्सूक्ष्मतराय ते ॥३८॥
स्थूलात्स्थूलतरायेश नमस्ते जगतीपते ॥
जगन्नाथाय जगतां संहारपरिकारिणे ॥
विकारिणे निराशाय निरीहाय नमोऽस्तु ते ॥ ३९ ॥

ऋषिगण स्तुति करते हैं ।

हे कल्याणमूर्ति ! आप ऐश्वर्य्यस्वरूप हैं आपही सर्व व्यापक हैं आपका रूप और मूर्ति दोनोंही शुभ हैं आप रूप और आत्मासे रहित हैं ॥ ३५ ॥ आप निरंजन और शुद्धस्वरूप हैं । आपकी आराधनासे ज्ञानरूप रत्नकी प्राप्ति होतीहै, आप देवाधिदेव हैं, अतएव सब देवता आपकी सेवा करते हैं, आपके प्रति नमस्कारहै, ॥ ३६ ॥ आप त्रिलोकीके नाथ हैं, त्रिलोकमें आपहीका तेज स्वरूप विराजमान है, आप समस्त शक्तिस्वरूप और सबके स्वामी हैं आपको नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे पार्वतीपते ! आपकी आभा सबसे निराली है आपको नमस्कार करते हैं । सब आपहीका ध्यान करतेहैं आप सूक्ष्म और सूक्ष्मसेभी अधिक सूक्ष्महैं ॥ ३८ ॥

हे सर्वेश्वर ! आप स्थूलसे अधिक स्थूल हैं आपही जगन्नाथ एवं जगत्‌का संहार करनेवाले हैं आपको नमस्कार है, विकार करनेवाले तथा चेष्टाहीन हैं आपका स्वामी कोई नहीं आपको नमस्कार है ॥ ३९ ॥

भस्मभूषितदेहाय हिमाद्रिपतये नमः ॥
नमः काशीनिवासाय निराधाराय ते नमः ॥४०॥
विरुद्धचर्महीनाय नीलकण्ठाय वेधसे ॥
सृजते च पालयते सर्वतत्त्वस्वरूपिणे
योगिने योगरूढाय योगिनां पतये नमः ॥ ४१ ॥

हे कैलासपते ! आपका अंग विभूतिसे भूषित है, हे निराधार! आप काशीनिवासी हैं अतएव आपको नमस्कार है ॥ ४० ॥ आपने निषिद्ध चर्मका परिधान नहीं किया है, आपका कण्ठ नील है आपही विधाता हैं । हे तत्त्वस्वरूपी ! आपही संसारकी रचना और पालन पोषण करते हैं । योगी हो योगमें आरूढ होके आपही योगियोंके पति हो ॥ ४१ ॥

स्कन्द उवाच ।

इति तेषां स्तुतिं श्रुत्वा दिव्यां वै वेदसंमिताम् ॥
प्रोवाच संतुष्टमनाः सर्वानृषिगणाञ्छिवः ॥ ४२ ॥

स्कन्दजी बोले । वेदसम्मित उनकी ऐसी दिव्य स्तुति सुन संतुष्ट हो श्री महादेवजी ऋषिमंडलीसे यों बोले ॥ ४२ ॥

ईश्वर उवाच ।

भोस्तापसाः किं युष्माकमभीष्टं वदत द्रुतम् ॥
किमर्थमागता ह्यत्र मां स्तोतुं भक्तितत्पराः ॥४३॥

युष्माकमीप्सितं सर्वं पूरयिष्याम्यसंशयम् ॥
सत्यं वदत मे क्षिप्रं यद्वा मनसि संस्थितम् ॥ ४४ ॥

महादेवजी बोले । हे तपस्वियो ! तुह्मारी क्या अभिलाषा है? मुझसे शीघ्र कहो । तुम लोग भक्तिमें तत्पर हो तब यहां मेरी स्तुति करनेको किस प्रयोजनसे आये हो? ॥ ४३ ॥ जो कुछ तुम्हारे मनमें हो सब सत्य २ कहो, क्योंकि तुम्हारी जो इच्छा होगी मैं उसको अवश्य पूर्ण करूंगा ॥ ४४ ॥

ऋषय ऊचुः ।

भगवन् सर्वभूतेश कृताऽर्थाः स्मो वयं किल ॥
यैर्भवान् दृष्टिमार्गं हि प्रापितो भक्तवत्सलः ॥४५ ॥
कलावंतर्हिता काशी इति शप्ता किलाधुना ॥
तद्वेदश्रवणात्प्राप्तपीडा ह्यत्र समागताः ॥ ४६ ॥

ऋषि बोले । हे सर्व प्राणियोंके अधीश्वर भगवान् ! हम सब लोगोंको इसलिये धन्य है कि—आप भक्तवत्सलके दर्शन-का हमें लाभ होरहा है ॥ ४५ ॥ आज कल काशीको यह शाप दियागया है कि वह कलियुगमें लुप्त होजायगी, यही सुनके हम आपके पास आये हैं ॥ ४६ ॥

कलौ पापसमाविष्टे सर्वधर्म्मविवर्जिते ॥
कथं काशीं विना देव गतिर्नॄणां भविष्यति ॥४७॥
कथं संसारपाशस्य समुच्छेदो भविष्यति ॥
कलौ येषां गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः४८॥

हेनाथ! कलियुगमें धर्म तो कोईहै नहीं पापही पाप आकीर्ण होरहे हैं, तो फिर काशीके बिना मनुष्योंकी मुक्ति कैसे होगी?

तथा सांसारिक बंधनोंका छेदन कैसे होगा ? क्योंकि जिनकी कहीभी गति नहींहै उनको काशीही गति है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

तस्यामन्तर्हितायां तु कुत्र स्थानं तव प्रभो ॥
एतन्नः संशयं छिंधि यतस्त्वं करुणानिधिः ॥४९॥

हे प्रभो ! जब काशीही लुप्त होजायगी तो फिर आपकी स्थिति कहां होगी ? आप करुणानिधि हैं अतएव आप हमारे इस सन्देहको निवारण कीजिये ॥ ४९ ॥

ईश्वर उवाच ।

यदा पापस्य बाहुल्यं यवनाक्रान्तभूतलम् ॥
भविष्यति तदा विप्रा निवासो हिमवद्गिरौ ॥५०॥
काश्या सह करिष्यामि सर्वतीर्थैःसमन्वितः ॥
अनादिसिद्धं मे स्थानं वर्तते सर्वदैव हि ॥५१॥

श्रीमहादेवजी बोले ! जब यवन समस्त भूमिको आक्रान्त करलेंगे अतएव पापोंकी अधिकता होगी तब हे विप्रो ! हिमालय पर्वतके ऊपर हमारा निवास होगा ॥ ५० ॥ काशी और अन्य तीर्थोंसहित मैं वहांही निवास करूंगा । क्योंकि सदासे वोही हमारा अनादिसिद्धस्थान है ॥ ५१ ॥

काश्यां हि यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि तत्र हि ॥
वर्त्तंते सर्वदा नूनं भुक्तिमुक्तिकराणि च ॥ ५२ ॥
अन्येषु तीर्थराजेषु काश्यामपि द्विजोत्तमाः ॥
अंशांशभावतो विप्रा निवसामि सदाऽनघाः॥५३॥
केदारमण्डले ह्यत्र साकल्येन स्थितिर्मम ॥
अस्यास्तु दर्शनादेव मुक्तो भवति मानुषः ॥ ५४ ॥

जितनेभी तीर्थ हैं वे सब काशीजीमें विद्यमान हैं वे भुक्ति मुक्ति (भोग तथा मोक्ष) देनेवाले हैं। हे निष्पाप ब्राह्मणो ! काशीमें तथा अन्यान्यतीर्थोंमें मैं अंशरूपसे निवास करता हूं, किन्तु श्रीकेदारमण्डलमें सम्पूर्णतया मेरी स्थिति रहती है अतएव उसके दर्शन करनेहीसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

यदि स्यात्पुण्यवशतो मृतिरत्र तु कस्यचित् ॥
कृमिकीटपतंगादेः सोऽपि मुक्तो न संशयः ॥५५॥
यथा काशी तथा ह्येषा मत्पुरी भेदवर्जिता ॥
यः कश्चिद्भेदकृल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

यदि पुण्यवशात इस स्थानमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु होजाय तो वह चाहे कृमि कीट तथा पतंग आदिही क्यों न हो तथापि उसकी निःसन्देह मुक्ति होजातीहै, काशी पुरी हमारी जैसी है ऐसीही हमारी केदारपुरी है इसमें कोई भेद नहीं, सुतराम् जो व्यक्ति संसारके बीच इन दोनोंमें भेद समझता है वह निश्चयही नरकगामी होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अत्र स्नानं तु यो मर्त्यःकरोति यदि भाग्यतः ॥
अयुतार्काभयानेन स गच्छेन्नः पदं ध्रुवम् ॥ ५७ ॥
अस्मिन्क्षेत्रे विलीयन्ते पापान्यन्यत्र मानवैः ॥
कृतानि स्पर्शमात्रेण महांत्यपि च सुव्रताः ॥ ५८ ॥

यदि भाग्यवशात् कोई मनुष्य इस स्थानमें स्नान करले तो वह दशसहस्र सूर्य्यकी प्रभाके सदृश कान्तिसे दीप्तिमान् विमानमें

आरूढ हो हमारे परमपदको जाता है । हे सुन्दर व्रतके आचरण करनेवाले महर्षियो ! अन्यान्यस्थानोंमें जो पाप किये गये हैं वे सब इस स्थानमें आने और इसका स्पर्शमात्र करनेहीसे नष्ट होजाते हैं, चाहे उनके महापापही क्यों नहों ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अस्मिन्क्षेत्रे तु यः पापं करोति मनुजाधमः ॥
भ्रमन् पिशाचैः सार्द्धं तु न भूयः पुरुषो भवेत् ॥५९॥
अत्र स्वल्पं च यत्पापं करोति मनुजः क्वचित् ॥
तद्वर्द्धते प्रतिफलं कोटिकोटिगुणं तथा ॥ ६० ॥

जो नीच मनुष्य इस स्थानमें पापका आचरण करता है, वह पिशाचोंके साथ भ्रमण करता है तथा वह फिर मनुष्ययोनिको नहीं प्राप्तहोताहै। कोई मनुष्य इसस्थानमें स्वल्पपापकाभी आचरण करे तो उसका फल करोडगुणा वृद्धिको प्राप्त होताहै॥५९॥६०॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नास्मिन्पापं समाचरेत् ॥
अत्र यो मासमेकं तु अविच्छेदं दृढव्रतः ॥
गंगायां स्नाति यत्पुण्यं वदामि शृणुत द्विजाः॥६१॥
इह लोके चिरं स्थित्वा भुक्त्वा भोगानशेषतः ॥
कल्पं मदीयलोके तु स्थित्वा भूमौ नृपो भवेत्॥६२॥

अतएव प्राणियोंको चाहिये कि, यहां किसीप्रकारका पापाचरण न करें. जो मनुष्य एक मास पर्यन्त दृढव्रत धारणपूर्वक इस स्थानमें गंगास्नान करता है उसके फलका वर्णन करता हूं सो सुनो । इस लोकमें चिरंजीव रहकर समस्त भोगोंको उपभोग करके वह मनुष्य एककल्पपर्यन्त हमारे लोकमें निवास करता है तथा फिर मृत्युलोकमें राजा होताहै ॥६१॥६२॥

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो धर्मज्ञो बहुदानदः ॥
पुत्रपौत्रैः परिवृतो धर्मभुग्जायते यथा ॥
अंते काश्यां समागत्य मय्येव परिलीयते ॥ ६३ ॥
त्रिरात्रमत्रोषित्वा तु पूजयित्वा शिवं द्विजाः ॥
यत्र कुत्रापि म्रियते स शैवं लोकमाप्नुयात् ॥६४॥

वह व्यक्ति समस्त शास्त्रोंके अर्थ तथा उनके तत्त्वका ज्ञाता धर्माचरणका जाननेवाला तथा प्रभूतदानी होता है, पुत्र पौत्रोंसे युक्त एवं धर्मका उपभोग करनेवाला होता है और अन्तसमय काशीमें आय मुझमें लीन होजाता है । यदि तीन रात्रिपर्यंत यहां निवास करे और इस मूर्तिका पूजन करनेके अनन्तर फिर चाहे जिस स्थानमेंही मरण क्यों न हो तथापि उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

अन्यजन्मनि सोप्यत्र प्राप्नोत्येव मृतिं शुभाम् ॥
तारकं ब्रह्म ह्यत्रैव उपदेक्ष्यामि मानुषम् ॥ ६५ ॥
प्राणेषूत्क्रममाणेषु येन मुक्तो भवेन्नरः ॥
जीवमात्रोपि यः कश्चिदत्र प्राणान्विमुंचति ॥
स एव जायते लीनो मद्देहे सकलाश्रये ॥ ६६ ॥

अन्यजन्ममें भी जब यहां मरण होता है तब मैं मरणके समय मनुष्योंको तारक मन्त्रका उपदेश करता हूं ॥ ६५ ॥ उसके उपदेशसे प्राणत्यागके अनन्तर मनुष्य मुक्त होजाता है. चाहे जो जीव इस स्थानमें प्राणोंका परित्याग करे वह अवश्यही मेरी देहमें लीनहोजाता है, क्योंकि हमारेही देहमें सबका आश्रय है ॥ ६६ ॥

विप्र क्षेत्रं न मुक्तं वै अविमुक्तं ततः स्मृतम् ॥
जप्तं दत्तं हुतं तप्तमविमुक्ते किलाक्षयम् ॥ ६७ ॥
अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशीं न हि त्यजेत् ॥
गुह्यानां परमं गुह्यमेतत्क्षेत्रं परं मतम् ॥ ६८ ॥

हे ब्राह्मण ! स्वयम् क्षेत्र मुक्त नहीं होता है अत एव उसे अविमुक्त कहतेहैं । सुतराम् उस क्षेत्रमें जो कुछ जप, दान, हवन अथवा तप किया जाय वह सबही अक्षय होता है । चाहे पाषाणमें ठुकराकर चरणोंको तोडले किन्तु काशीमेंही बसे उसका परित्याग न करै, क्योंकि हमारा यह क्षेत्र गुप्तसेभी अधिक गुप्तहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

वरुणा च नदी चासी मध्ये वाराणसी तयोः ॥
अत्र स्नानं जपो होमो मरणं हरपूजनम् ॥
श्राद्धं दानं निवासश्च यज्ञः स्याद्भुक्तिमुक्तिदः ६९॥
मणिकर्णिकायां स्नात्वा यः पितॄन्सन्तर्पयेज्जलैः ॥
पितरस्तस्य तृप्ताः स्युर्यावत्कल्पशतंशतम् ॥ ७० ॥

वरुणा और असी गंगाओंके बीच वाराणसी पुरी है इसमें स्नान जप होम प्राणपरित्याग और महादेवजीका पूजन करना एवम् श्राद्ध दान वहां निवास करना तथा यज्ञ करना इन सबहीका फल भोग और मोक्षप्रदान करतेहैं । जो व्यक्ति मणि-कर्णिकामें स्नान कर जलसे पितरोंका तर्पण करता है उसके पितर सैकडों कल्पपर्य्यन्त तृप्त रहते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

पिण्डदानं च ये कुर्य्युर्विधिवत्पितृतत्पराः ॥
उद्धृताः पितरस्तैस्तु कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ ७१ ॥

यः कश्चिदेतत्क्षेत्रं तु ह्यवज्ञाय कुबुद्धिमान् ॥
अन्यतीर्थं व्रजेत्सोऽपि रमते कौणपैः सह ॥ ७२ ॥

पितरोंके भक्तिभावमें तत्पर होकर जो व्यक्ति पितरोंके निमित्त पिण्डदान करतेहैं उनके एकसौ एक पितृकुलका उद्धार होजाताहै। जो मूढमति इस क्षेत्रका निरादरके करके अन्यक्षेत्रकी यात्राको जाताहै वह राक्षसोंके साथ रमण करताहै॥ ७१ ॥ ७२ ॥

येन केनाप्युपायेन मृतिमिच्छेच्च तत्र वै ॥
अमंगलं जीवितं तु मरणं यत्र मङ्गलम् ॥७३॥
इतः प्रभृति भो विप्रास्तत्रैव संवसाम्यहम् ॥
यावन्ति काश्यां तीर्थानि तानि तत्रैव संति हि॥७४॥

जैसे भी बनसके वैसे उस स्थानमें मरणलाभकी अभिलाषा करनी कर्तव्य है. कारण कि, वहां जीवित रहना अमंगल और मरणही मंगल है। हे ब्राह्मणो ! अबसे मैं उसी पुरीमें निवास करता हूं और काशीमें जो तीर्थ हैं वे सबही यहां उपस्थितहैं ७३।७४

बहुनात्र किमुक्तेन सा मुक्तेः कारणं परम् ॥
तत्त्वज्ञानं विनान्यत्र मुक्तिर्नैवास्ति दुर्लभा ॥७५ ॥
अत्र सा प्राप्यते देहत्यागेनैव महाव्रताः ॥
तस्मादस्मात्पुण्यतममन्यन्नास्तीह भूतले ॥७६ ॥

विशेष कथनसे क्या ? वह पुरी मुक्तिका कारणस्वरूप है । मुक्ति बडा दुर्लभ पदार्थ है, वह बिना तत्त्वज्ञानके प्राप्त हुए नहीं होती, किन्तु हे महाव्रतधारियो ! वही मुक्ति इस तीर्थमें केवल देहपरित्याग करनेहीसे प्राप्त होजातीहै, अतएव भूमण्डलके ऊपर इसके अतिरिक्त कोईभी स्थान ऐसा श्रेष्ठ नहीं है ॥७५॥ ७६॥

केदारमण्डले सारात्सारमेषैव मत्पुरी ॥
इयमेव कलौ म्लेच्छजनसंकुलके ध्रुवम् ॥
काशीति ख्यातिं यात्येव नान्यथा मम भाषितम् ७७।
कलावंतर्हिता काशी यवनाः प्रबलायदा ॥
भविष्यति तदा ह्यस्यां काशीसंज्ञा सुमुक्तिदा॥७८॥

श्रीकेदारमण्डलमें सारसे भी अधिकसार यह पुरी है। म्लेच्छोंके द्वारा संकुल हुई कलियुगमें यह पुरी काशीके नामसे प्रसिद्ध होगी । यह हमारा कथन अन्यथा न होगा। जब यवनोंके समयके अकर्मोंकी अधिकता होयगी कलियुगके उस भागमें काशी अन्तर्धान होजायगी उस समय काशीसंज्ञासे यही तीर्थराज प्रख्यात होगा ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इदं मे परमं गोप्यं स्थानमस्ति सुनिर्मितम् ॥
पापिष्ठास्तन्न जानन्ति मम मायाविमोहिताः ॥७९॥
धर्मज्ञाश्च सदाचाराः सुशीलाः सत्यवादिनः ॥
तेषामेव भवेदेषा नयनांतरगोचरा ॥ ८० ॥

यह हमारा परमगोपनीय स्थान निर्माण कियागया है अत एव पापिष्ठ हमारी मायासे मोहित हुए व्यक्तिगण इसे कुछ नहीं जान सक्ते हैं। धर्मके ज्ञाता श्रेष्ठ आचरण करनेवाले सुन्दर शीलवान् (पुण्यप्रकृति) तथा जो व्यक्ति सत्यवादी हैं इस पुरीका उन्हींको दर्शन होसक्ता है ॥ ७९ ॥ ८० ॥

जन्मान्तरसहस्रेषु यदि तप्तं महत्तपः ॥
तदैव प्राप्यते नूनं मत्पुरी नान्यथा द्विजाः ॥८१॥

पंचक्रोशात्मकं क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतस्तथा ॥
दक्षिणोत्तरतश्चैव मृतो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ८२ ॥

हे विप्रगण ! यदि अन्य सहस्रों जन्ममें किसीने उग्रतपका आचरण किया हो तो तब इस पुरीकी उसको प्राप्ति होसकतीहै, अन्यथा कदापि नहीं । पूर्वसे पश्चिमको तथा उत्तरसे दक्षिणको यह पांचकोशका क्षेत्र है यहां मृत्यु होनेसे मुक्तिका लाभ होता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

तत्रैव वर्तते लिंगं मदीयं मरकतप्रभम् ॥
तत्र यत्क्रियते कर्म तदक्षय्याय कल्पते ॥ ८३ ॥
महारुद्रविधानेन ह्यभिषेकं करोति यः ॥
ममानुचरतां प्राप्य मयैव सह मोदते ॥ ८४ ॥

वहांही हमारा लिङ्ग मरकतमणिके सदृश प्रभावाला विद्यमान है । वहां जोही कर्म कियाजाता है उसका कभी क्षय नहीं होता. जो व्यक्ति उक्तस्थानमें महारुद्रकी विधिसे अभिषेक करता है वह हमारा अनुचर बनके हमारे साथही आनन्दका उपभोग करता है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति मानवः ॥
येन नालोकितं लिंगं स शोच्यो नात्र संशयः॥८५ ॥
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनम् ॥
कामार्थी लभते कामान्सत्यमेव न संशयः ॥ ८६ ॥

वह मनुष्य जिस २वस्तुकी कामना करताहै उसको उसीकी प्राप्ति होजाती है जिस पुरुषको हमारे उस लिङ्गके दर्शनकी प्राप्ति

नहीं हुई अवश्यही उसका शोच करना कर्तव्य है। जो व्यक्ति पुत्रकी कामना करता है उसे पुत्रोंकी, धनार्थीको धनकी और अन्यान्य कामनावालेको उन्हीं उन कामनाओंकी निःसन्देह प्राप्ति होती है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

स्कन्द उवाच ।

इत्युक्त्वा विससर्ज्जाथ सर्वान्नृषिगणान्मुदा ॥
समाययौ स्वभवने वारणावतसंज्ञके ॥८७॥
ततः प्रभृति देवोऽसौ तत्रैव वसति ध्रुवम् ॥
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि यथा तप्तं पुरा तपः ॥
जामदग्न्येन रामेण सावधानोऽवधारय ॥ ८८ ॥

श्रीस्कन्दजी बोले—यों कहकर आनन्दपूर्वक उन्होंने सब ऋषियोंको बिदा कर दिया और स्वयम् वारणावतसंज्ञक निज-भवनमें आये, अवश्यही उस दिनसे महादेवजी उक्त स्थानमें निवास करते हैं। अब हम वह आख्यान तुम्हारे प्रति वर्णन करतेहैं कि, जिस प्रकार जमदग्निकुमार परशुरामजीने तपका आचरण किया था तुम सावधान होकर श्रवण करो८७॥८८॥

पुरा परशुरामो वै वारणावतसंज्ञके ॥
क्षेत्रे मुनिगणैर्जुष्टे गंगाम्भोभिर्विराजिते ॥ ८९ ॥
नानाद्रुमलताकीर्णे नानामुनिगणान्विते ॥
नानारत्नमये दिव्ये नानापक्षिगणावृते ॥ ९० ॥
गंगातटे महादेवं भूतिभूषितविग्रहम् ॥
त्रिनेत्रं वृषभारूढं नंदिभृंग्यादिभिर्गणैः ॥ ९१ ॥
सेवितं दण्डहस्तेन द्वारपालेन सेवितम् ॥

सुरासुरगणाराध्यं व्याघ्रचर्मासनस्थितम् ॥ ९२ ॥
द्वीपिकृत्तिवसानं च चन्द्रार्द्धशोभिभालकम् ॥
ध्यायन्सदाशिवं देवं निश्चलो निर्मलो मुनिः ९३॥

प्रथम वारणावतसंज्ञक क्षेत्रमें जहां अनेक महर्षिगण उपस्थितहैं गंगाजीकी लहरैं विराजमान हैं जो स्थान अनेक लता और वृक्षोंसे आकीर्ण है, अनेक मुनिगण प्रीतिपूर्वक जिसका सेवन करते हैं जो अनेक रत्नोंसे सम्पन्न होनेके कारण रत्नमय है, जिस दिव्य क्षेत्रमें अनेक प्रकारके पक्षियोंके समुदाय उपस्थित हैं, ऐसी श्रीगंगाजीके तटपर जिनका शरीर विभूतिसे समलंकृत है. जिनके तीन नेत्र हैं जो स्वयम् (धर्मरूप) वृषभके ऊपर आरूढ हैं नन्दी और भृंगीआदि जिनकी सेवा करतेहैं एवं च दण्ड हाथमें ग्रहण किये द्वारपाल जिनकी उपासना करते हैं देवता तथा असुरगण जिनका आराधन करते हैं जो व्याघ्रचर्मके आसनपर उपस्थित रहते हैं जिन्होंने द्वीपिचर्मको धारण किया और जिनका मस्तक अर्धचन्द्रमासे सुशोभित है ऐसे सदाशिव महादेवजीका परशुरामजी ध्यान करने लगे । उन मुनिके पापरूप सब मल दूर होगये वे निश्चल होगये ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

जितेन्द्रियो जितक्रोधः स्थितः स्थाणुरिवापरः ॥
एवं तपः कुर्वतश्च प्रारुरुहुर्लता द्रुमाः ॥
तस्यांगे धीमतश्चित्रं बभूव मुनिवन्दित ॥ ९४ ॥
एवं प्रतपतस्तस्य संतुष्टोऽभूत्सदाशिवः ॥
उवाच वचनं रम्यं मेघगंभीरया गिरा ॥ ९५ ॥

उन्होंने इन्द्रियों और क्रोधको जीतकर स्थाणुकी सदृश स्थिति ग्रहण की. हे मुनिवन्दित ! इस प्रकार तप करते २ यह अद्भुत कौतुक हुआ कि, उन महात्माके शरीरमें लता तथा वृक्ष लग आये । उनकी इसप्रकार तपस्या करनेसे सदाशिव महादेवजीने सन्तुष्ट हो मेघनिर्घोषकी समान गम्भीर वाणीसे मनोहर वाक्य कहे ॥ १४ ॥ १५ ॥

श्रीशिव उवाच ।

वरं वरय भद्रं ते यत्ते मनसि वर्तते ॥
तत्तुभ्यं सर्वथा दास्ये मा कुरुष्वात्र संशयम् ॥१६॥

श्रीशिवजी बोले जो कुछ तुम्हारे मनमेंहै उसी वरकी याचना करो मैं वह सभीकुछ दूंगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १६ ॥

स्कन्द उवाच ।

इत्युक्तस्तु शिवेनासौ ययाचे वरमुत्तमम् ॥
अजेयत्वं रणेऽरीणां तथा च चिरजीविताम् ॥१७॥
प्रसन्नेन शिवेनोक्तस्तत्तथैव भविष्यति ॥
इत्युक्त्वा परशुं तस्मै दत्तवाञ्शत्रुमारकम् ॥ १८ ॥

स्कन्द बोले—जब महादेवजीने इस प्रकार कहा तब इन्होंने उत्तम वरकी याचना करी. यह वर मांगा कि, संग्राममें शत्रु विजय न करसकैं, तथा स्वयं चिरजीव रहैं ॥ १७ ॥ श्रीमहादेवजी प्रसन्न थे अतएव उन्होंने कहा सब ऐसेही होगा वरप्रदान करके शत्रुविनाशी परशाभी उन्हें दिया ॥ १८ ॥

ततः परशुमादाय प्रणम्य च सदाशिवम् ॥
सार्वभौम त्वयाऽत्रैव वस्तव्यं सर्वदैव हि ॥ ९९ ॥
सकलांशेन देवेश सगणेनेह मुक्तिद ॥
इति देवं प्रार्थयित्वा रामस्तत्रैव संस्थितः ॥१००॥
चकार शिवभक्तिं च योगिनामप्यगोचराम् ॥
ततः स एव संचक्रे क्षत्रियाणां हि संक्षयम् ॥
त्रिःसप्तकृत्वो जयति परशोर्धारको मुनिः ॥१०१॥

इसके अनन्तर परशाको ले बारंबार महादेवजीको प्रणाम करकै पुनः प्रार्थना की कि, हे सार्वभौम! आपको अपने सब अंशोंसे सदैव यहां निवास करनाचाहिये. हे मुक्तिद! शंभो! आपके गणभी आपके साथ यहीं निवास करें। महादेजीकी इसी भाँति प्रार्थना करके परशुरामजी भी वहीं स्थितहोगये और शंकरकी ऐसी भक्ति की कि योगियोंकोभी दुर्लभ है । पुनः इन्होंने इसी परांक्रमसे इक्कीस वार क्षत्रियोंका विनाश किया ॥९९॥१००॥१०१॥

इति ते कथितं विप्र सौम्यवाराणसीभवम् ॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते भवभीतितः ॥१०२॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे सौम्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

हे विप्र ! इस प्रकार हमने आपसे सौम्यवाराणसी (गंगोत्तरी) माहात्म्य संक्षेपसे कहा । इसके श्रवण करनेसे मनुष्य समस्तपापों और संसारके भयसे मुक्त होजाता है ॥ १०२ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डे भाषाटीकायां सौम्यवाराणसीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥
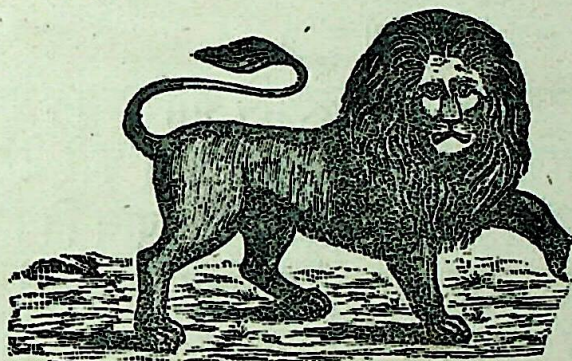
गङ्गास्तुति ।

छन्द—दुरितदावन श्रुतिसुहावन चरितपावन गंगके ।
अगतिबाधन सुफलसाधन करहु दुर्लभ अंगके ॥
जगविषयतुषपरिनामदुखसुखछैनिककुसुंभीरंगके ।
विश्वासका मलसार तन कठपूतली पल भंगके ॥ १ ॥

भाषा—इसप्रकार पापविधुर कर्णमधुर, गंगाके पवित्रचरित्र तुम्हें सुनादिये हैं, अब आप सरीखे महानुभावोंको उचित है कि-इस दुर्लभ मनुष्यशरीरके दुर्गतिभंजन, परिणामस्थ उपाय करें । सांसारिकविषय (शब्दादिक) तो तुष (भूस) के समान तुच्छ और परिणाममें दुःखदायी हैं, एवं पुत्रदारादि-कसुखभी, कुसुम्भीरंगके समान क्षणिक हैं. निष्ठासार शरीरका तो विश्वास ही क्या है ? क्योंकि—यह कठपूतलीके समान सूत्रबद्ध और क्षणभंगुर है ॥ १ ॥

यह कोटिसुरतरु कोटिसुरगवि कोटिकञ्चन मेरुसे ।
कोटि पारस कोटि चिन्तामनिन्हकी करि ढेरुसे ॥
कुरुछेत्र वसि उपराग तकि दुज देइ दान विधानते ।
जनहोयफलततएकवासरगंगअविधिअन्हानतें ॥ २ ॥

भाषा—हे राजन् ! करोडों कल्पवृक्ष, करोडों कामधेनु, करोडों सुवर्णोंके पहाड, करोडों पारस तथा चिन्तामणियोंके ढेरसे क्या कार्य्यहै ? अर्थात् क्षणिक शरीरके परिणाममें यह सब धूलहैं। केवल गंगाकी शरण लेना श्रेष्ठहै। क्योंकि कुरुक्षेत्रमें वासकरते हुये मनुष्य, विधिपूर्वक ब्राह्मणको ग्रहणकालिक दानदे-

नेसे जितना फल होता है, उतना फल तो विधानके विनाही, एक दिनके गंगास्नानसे प्राप्त होताहै ॥ २ ॥

नृप नीतिं ज्ञानसमान परपथ हितकलाप जो गाइहै।
तेहि सकलमंगल सर्वसम्पति लहहिं,जत मनभाइहै॥
मुक्ति चौविधि भक्ति नौविधि भुक्ति सौविधि पाइहै।
दुख दुरित दुर्मतिदुअन दुर्यश कबहुँ निकट न आइहै

भा०—हे नृप ! नीति, ज्ञानसमान, इस मोक्षमार्गके सदुपदेशको जो भद्रपुरुष सुनेगा और गावेगा, वह सबप्रकारके मंगल, सब प्रकारकी सम्पत्ति तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पावेगा । किं बहुना चारप्रकारकी (सार्ष्टि, सामीप्य, सायुज्य, सारूप्य) मुक्ति और नौ प्रकारकी (श्रवण मनन निदिध्यासनादिक) भक्ति तथा सैंकडोंप्रकारकी भुक्ति (भोग) को अवश्य प्राप्त करेगा । दुःख दुरित (पाप) दुर्ज्जन, दुर्यश प्रभृति तो उसके समीप भी न आवेंगे ॥ ३ ॥

श्रीगंगसम तीरथ नहीं गुरु मातु सम सुर विष्णुसे ।
नहिं सत्य सम तप तत्त्व गुरुसम नास्ति बन्धु सहिष्णुसे ॥ गुनत गावत हर्ष छावत परम पथकर मित्रई।
दलसिंह भाषित अखिलकलिमलहरनचरितपवित्रई

भा०—श्रीगंगाके समान तीर्थ,माताके समान गुरु,विष्णुके समान देवता, सत्यके समान तप दूसरा कोई नहींहै एवं गुरुके समान दूसरा तत्त्व और क्षमाके समान बन्धु त्रैलोक्यमें कोई नहीं है। अत एव श्रीदलसिंह नरेशका कथन कियाहुआ गंगाका यह

पवित्र चारित्र—जो कलियुगके समस्त पापोंका हरनेवाला और मोक्षमार्गका एक मित्रहै—यह गुना जावे और गायाजावे तो उभयलोकमें आनन्ददायक है ॥ ४ ॥

चित्रां विचित्रबदरीश्वरपादभक्त्या
मुक्तावलीं कुरुत कण्ठगतां नितान्तम् ।
नन्देन भूभृति सदादिपदेन गीतां
शीतांशुमण्डलवराङ्गणगन्तुकामाः ॥ १ ॥
श्रीनौटियालकुलकान्तिकृता महेशा-
नन्देन सोऽहमचिरेण कृतः कृतार्थः ॥
मुक्तावलीविरचनामृतसिन्धुपूरे
यत्प्लावितः कलिकलङ्कविपङ्कमग्नः ॥ २ ॥

श्रीमत्कवीन्द्रचूडामणिपदारविन्दमकरन्द—दामोदरानन्द-
नाथनन्दनमहाराष्ट्रवंशावतंसडवरालोपाह्वसदानन्दभणी-
तो बदरीशस्तवोऽयं वेदरसनवभूमितेऽब्दे आश्विनको-
जागरपूर्णिमायां समाप्तिमफाणीत् ॥शुभम्॥स-
मर्पितश्चायं पंडितमहेशानन्दशर्म्मणां करतले
बदरीश्वरचरणसरोजतले च ॥

विज्ञप्ति ।

श्रीकेदारखण्ड भाषाटीकासहित ।

यदि आप श्रीभागीरथी गङ्गावतरण गंगाद्वार(हरिद्वार)आदिक महान् तीर्थ तथा श्रीबद्रीकेदारादिक आश्रमोंके असंख्य क्तिदाता क्षेत्रोंका माहात्म्य तथा उनको सेवन करनेवाले देव दनुज और सूर्य्यवंशी राजाओंकी प्राचीन कथा पूर्णविस्तारसे जानना चाहो तो श्रीकेदारखण्ड ग्रन्थमें देखिये जिसमें २०६ अध्याय हैं। श्रीबद्रिकाश्रम उत्तराखण्ड पर जिन महाभाग्य सद्गृहस्थोंका प्रेम है, जो उसकी अकथ महिमापर मुग्ध हैं, जिनको ईश्वरीय सृष्टिका विचित्र विवरण जानकर "कैलास" का गुरुत्व जानना हो वे सज्जन हमारे अनुरोधसे अवश्य ग्रन्थ मँगवाकर एक दिव्य अप्राप्त ग्रन्थका अवलोकन करके महान् लाभ उठावें। जिस समय नारदजीको शिवजीने कैलासमें संगीत (गायन) विद्या पढाईथी उसका विवरण स्वरतालोंका पूर्ण विस्तार जो आजतक दूसरे किन्हीं ग्रन्थोंमें नहीं देखागया है वह प्रायः १२ । १३ अध्यायोंमें सम्पूर्ण हुआ है। गायन विद्याके ज्ञाता तथा रसिक गण देखें कि, इस महान् प्राचीन ग्रन्थमें इसका कैसा व्याकरणहै। मू० मय डाक खर्चाके ७) रु० मात्र है।

भानुतापम शोधित–

शुद्ध शिलाजीत ।

नकली शिलाजीतने इस समय असली शिलाजीतको बदनाम करदियाहै । जिससे प्रायः शिलाजीतकी ओरसे सबका विश्वास हटता चलाजा रहाहै । परन्तु यह बात नहीं है. शिलाजीत उत्तम रासायनिक क्रियासे तइयार होनेसे वह सम्पूर्ण रोगमात्रकी एकमात्र महौषधी है । वह मृत्युलोकमें अमृततुल्यही है मनुष्यके वीर्यके कोष्ठके विगडजानेहीसे समस्त रोग उत्पन्न होते हैं. और शिलाजीतका मुख्य कर्तव्य यही है कि, वह विगडी हुई धातु और खूनको अपने असलीरूपमें लाकर मनुष्योंके प्रत्येक रोगको हटाके बूढेको भी अच्छीतरह युवा बना सक्ती है। शास्त्रोंमें भी इसके अतुलनीय गुण इसीप्रकार लिखे गयेहैं यह दुनियां जानतीहै ।

हम मुद्दतसे शिलाजीतका कारखाना करते हैं। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ सब तरहकी स्वतः अपने हाथसे तयार करते हैं हम ठेकेदारोंसे पहले स्वरूपकी कच्ची शिलाजीतके मट्टी पत्थर खरीदकर शास्त्रकी क्रियासे धूपकी गर्मीमें कथित करके महीनोंमें तयार करतेहैं । जिसकी उत्तमता भारतमें विदितहै तथा सैकडों प्रशंसापत्र मौजूद हैं, आजमा देखिये. निकम्मी निकले तो वापिस लेलेंगे मू० १॥) रु० तोलासे = तोलातक ।

अशुद्ध शिलाजीत हानिकारक है–

पुस्तक मिलनेका पता–

पण्डित–महेशानन्द शर्म्मा,

नन्दप्रयाग (गढ़वाल)